Chap - 2

द्वितीय अध्याय

दलित विमर्श : कुछ आयाम

प्रास्ताविक : ---

प्रस्तुत शोध-प्रबंध का विषय प्रेमचंद तथा शैलेश मटियानी की कहानियों के परिप्रेक्ष्य में दलित जीवन के चित्रण से सम्बद्ध है । अतः दलित-विमर्श के कतिपय आयामों पर विचार कर लेना अत्यावश्यक हो जाता है । आधुनिककाल के दो प्रमुख विमर्शों में ''नारी-विमर्श'' और ''दलित-विमर्श'' की परिगणना की जाती है । धर्म, शास्त्र तथा सामाजिक परंपराओं के नाम पर इन दोनों वर्गों पर अनेक प्रकार की निर्योग्यताओं को थोपा गया है और उन्हें शिक्षा जैसी बुनियादी वस्तुओं से दूर रखा गया है । हमारी वर्णव्यवस्था में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिए शिक्षा-व्यवस्था थी । इन तीनों वर्ण के लोगों की कुल जन संख्या १५-२० प्रतिशत बचते हैं । प्राचीनकाल में - वैदिक युग में नारी शिक्षा के कुछ प्रमाण मिलते हैं, किन्तु ये नारी शिक्षा बहुत सीमित थी । केवल कुछ ऋषि कन्याएँ, राजपरिवार की कन्याएँ तथा श्रेष्ठी कन्याओं को शिक्षा की सुविधा उपलब्ध थी । हमें अपने देश की पराधीनता के कारणों की पड़ताल

करनी होगी। जिस देश की आदर्श (?) व्यवस्था ९२ प्रतिशत लोगों को उपेक्षित और अशिक्षित रखने की हो, वह देश गुलाम न हो तो ही आश्चर्य हो सकता है। आज से ४० वर्ष पूर्व हैदराबाद से प्रकाशित "कल्पना" पत्रिका में ओमप्रकाश दीपक का एक लेख प्रकाशित हुआ था। इस लेख का ऐतिहासिक महत्व है। कल्पना के नवम्बर-दिसम्बर १९६२ में प्रकाशित दीपकजी के उस लेख की महत्वपूर्ण स्थापना यह थी कि जिसे हम आज का हिन्दी साहित्य कहते है वास्तव में वह मुख्य रूप से द्विजों का साहित्य है। उसमें भी द्विज पुरुषों का है। इन विचारों के साथ-साथ ओमप्रकाश दीपक ने एक स्थापना यह भी रखी थी कि आज का हिन्दी साहित्य तब तक सच्चे अर्थ में आधुनिक नहीं हो सकता जब तक उसमें गैर द्विजों के साहित्य का दखल नहीं होगा। इस संदर्भ में उनकी टिप्पणी है - "कल्पना के शतांक में मैंने उन साढ़े पांच सौ से अधिक भारतीय लेखकों की सूची देखी जिनकी पुस्तकों की समीक्षाएँ कल्पना के सौ अंको में प्रकाशित हुई। इनमें डेढ़ सौ से अधिक नाम ऐसे हैं जिनके आगे लगी हुई शर्मा, पाठक, पांडे, अवस्थी, चतुर्वेदी आदि उपाधियाँ उनके ब्राह्मण होने की घोषणा करती है। लगभग इतने ही, या कुछ अधिक नाम ऐसे हैं जो पहचाने जा सकते हैं कि वे कायस्थ, बनिया या क्षत्रियों के नाम हैं। कुछ नाम ऐसे भी हैं जिनके साथ कोई जाति-सूचक उपाधि नहीं हैं लेकिन जिन्हें मैं जानता हूँ कि वे सवर्ण हैं। कुल बीस स्त्रियाँ है। बाकी नामो में मैं केवल तीन-चार नाम ऐसे पहचान सका जिनकी यादव या मंडल उपाधि उनके शूद्र होने का संकेत करती है। इसलिए, अगर मैं अनुमान लगाऊँ तो केवल १०-२० से अधिक शूद्र नहीं होंगे तो यह संख्या वास्तव से अधिक ही होगी, कम नहीं।" [१]

अभिप्राय यह कि दलित जातियों में तथा नारीवर्ग में शिक्षा का परिणाम शुरू से ही न के बराबर होने के कारण साहित्य में भी उनकी संख्या नगण्य-सी रही है। दलित-विमर्श और नारी-विमर्श उभय की चर्चा इस आधुनिक काल में नवजागरण के बाद ही शुरू हुई है। जिस आधुनिक काल को "कलियुग" कहकर बहुत-से पोंगा पंड़ित टाईप के लोग उसकी भर्त्सना करते हैं, मुझे लगता है कि यह तथाकथित "कलियुग" ही दलितों और

स्त्रियों के लिए मुक्ति का युग है । प्रस्तुत अध्याय में इन दो विमर्शों में से दलित विमर्श को लेकर, उसके कुछ आयामों पर विचार करने का उपक्रम है, क्योंकि यह हमारे शोध-प्रबंध की उपादेयता की दृष्टि से भी समीचीन होगा।

दलितजीवन से तात्पर्य : ---

''दलित-जीवन'' का सीधा सहज और संक्षिप्त अर्थ है दलितों का जीवन। दलित वर्ग के लोगों के जीवन की समस्याएँ, उनकी जीवन-पद्धति, उनके विश्वास-अविश्वास उनकी रूढियाँ, उनकी मान्यताएँ तथा उन पर थोपी गई निर्योग्यताओं (Disabilities) के परिणाम स्वरूप उनका पद-दलितजीवन प्रभृति को ''दलितजीवन'' के अंतगर्त रखा जा सकता है। ''दलित '' का शाब्दिक अर्थ है कुचला हुआ ''दलित'' दलित शब्इ व्यापक रुप में पीड़ित के अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है। परन्तु आज जब हम दलित शब्द का प्रयोग करते है तो उसका एक विशिष्ट अर्थ होता है। आज के सामाजिक संदर्भ में दलित का अर्थ होगा वह जाति या समूदाय जिसका अन्यायपूर्ण समाज व्यवस्था के कारण सवर्णों या उच्च जातिओं के द्वारा दमन हुआ है जिनको दूषित किया गया है, रोंदा गया है। इस प्रकार दलित वर्ग में वे सभी जातियाँ सम्मिलित है जो जातिगत सोपान क्रम में निम्नतम स्तर पर है और जिनको शताब्दियों से दबाकर रखा गया है।

देशकाल के अनुसार दलितजातियों को विभिन्न नामों से सम्बोधित किया गया है उनके लिए शूद्र, अछूत, अंत्यंज, हरिजन, बाहरी जातीयाँ, अनुसूचित जातीयाँ (Scheduled Caste),अनुसूचित जनजाती (Scheduled tribe) आदि शब्दों का प्रयोग होता रहा है। इन शब्दों के साथ किसी न किसी प्रकार से असम्मान का भाव छिपा हुआ है अतः आधुनिककाल में इन असम्मान सूचक शब्दों के स्थान पर दलित वर्ग (Depressad Class) शब्द का प्रयोग होने लगा है और ये शब्द अब सनैही सनैही अत्याधिक प्रचलित हो रहा है, यहाँ तक की साहित्य में भी ''दलित साहित्य'' नामक एक नये समवर्ग की वृद्धि हुई है।

दलितवर्ग में अनेक जातीयाँ एवं जनजातियाँ समाविष्ट है। किन्तु उनके दलित होने के आधार पर पृथक-पृथक है। इन आधारों को ध्यानमें ररखते हुए दलित जातियों का वर्गीकरण निम्नलिखित चार वर्गों में किया जा सकता है - (१) अंत्यज या अछूत वर्ग (२) कर्मिन या शिल्पकार वर्ग (३) अपराधजीवी या जरायमपेशा वर्ग (४) आदिम जनजातियाँ।

(१) अंत्यज या अछूतवर्ग : ---

इस वर्ग में उन जातियों को सम्मिलित किया गया है जिनको शताब्दियों से अस्पृश्य माना गया है, अछूत माना गया है। उनके स्पर्श मात्र से सवर्ण या उच्चजाति के लोग अपवित्र हो जाते हैं, उनका मंदिरो में प्रवेश निषिद्ध है। उन्हें शास्त्रों का अध्ययन करने की छूट भी नहीं है। यदि उनका स्पर्श हो जाय तो स्नान करना पड़ता है। इनमें भंगी, धानुक, चमार, चांडाल, डोम, खालपा आदि जातीयाँ आती है जो मलमूत्र साफ करने का तथा जानवरों की खाल उतारने का कार्य करती है। ब्रिटिश शासन के प्रारंभ में इन नीच जातीयों के करोड़ो हिन्दुओं को अछूत माना जाता था इनके साथ असहय, अकथनीय और अमानुषी अत्याचार होते थे दक्षिण में अस्पृश्यता की प्रथा अपने उग्रतम रूपमें थी वहाँ उच्चजाति के लोग निम्नजातीयों के न केवल स्पर्श, अपितु छाया स्पर्श से भी अपवित्र हो जाते थे।

डॉ. हरिदत्त वेदालंकार ने अपने ग्रंथ ''भारत का सांस्कृतिक इतिहास'' में लिखा है - ''कोचीन की सरकारी रिपोर्ट के अनुसार ब्राह्मण नायर के स्पर्श से दूषित समझे जाते थे किन्तु कमलन (राज, बढ़ई, लुहार, चमार) ब्राह्मणों को चौबीस फीट की दूरी से अपवित्र कर देता था, ताडी निकालने वाला ३६ फीट से, चेरूमत कृशक ४८ फीट से और परेमन (गो मांस भक्षक परीहा) ६४ फीट से / यह संतोष की बात थी कि इससे पुरानी रिपोर्ट में परिहा ७२ फीट की दूरी से अपवित्र करनेवाला माना गया है। अभागे अछूत शहरों से बाहर रहते थे, मंदिरो में इनका प्रवेश वर्जित था, क्योंकि सब भक्तों के उद्धार करनेवाले देवता भी इनके दर्शन से दूषित हो

जाते थे । ये कुँ ओं से पानी नहीं भर सकते थे अस्पतालों और पाठशालाओं का लाभ नहीं उठा सकते थे वे उच्चवर्ग के बेगार आदि के अत्याचार सहते हुए बड़े दुःख से अपने नार्किय जीवन की घड़ीयाँ गिनते थे।'' २

(२) कर्मिन या शिल्पकार वर्ग : ---

इस वर्ग में वे जातीयाँ आती है जिन की आमदनी का स्रोत साधन संपन्न उच्चवर्गों से जुडा हुआ था। वे उच्चवर्ग के लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न चीज वस्तुओं का निर्माण करते थे या नाना प्रकार के कर्तबो से उनका मनोरंजन करते थे सेवा करनेवाली इन जातियों में धोबी, नाई, कुम्हार, चमार, बुनकर, कांछा, कोली, ढोली, डोम, भांड, बेडिया, ओड़, काल बेडिया, ढाडी, बछौडे आदि जातियों को परिगणित किया जा सकता है। गुजराती में इन जातियों के लिए ''वश्वैयां'' शब्द प्रचलित है, अर्थात् उच्चवर्ग के लोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु इन लोंगों को गाँवों मे बसाते थे। इनमें से चमार, डोम, बुनकर आदि जातियों को कहीं स्पृश्य और कहीं अस्पृश्य माना जाता था। शेष जातियाँ स्पृश्य मानी जाती थी परन्तु उनका सामाजिक स्तर निम्न ही माना जाता था और उनको भी उच्चजाती का अमानुषी व्यवहार सहना पड़ता था।

(३) अपराधजीवी या जरायमपेशा वर्ग : ---

इस वर्गमें उन जातियों को सम्मिलित किया जाता है जिनका सम्बन्ध शताब्दियों से अपराधवृत्ति एवं यायावरी से जुडा हुआ। ये जातियाँ प्रायः विचरणशील होती है और किसी एक स्थान पर टीककर नहीं रहती। पुलिस विभाग के अधिकारी इस वर्ग के पुरुषों को सदैव शंका की दृष्टि से ही देखते रहते है और सरकार पुलिस तथा समाज में उनकी छाप चोरी-चकारे करने वालों की ही है। ये लोग दिन में तरह-तरह के कर्तब

दिखाते है और रात्री में चोरी करते है उनकी स्त्रियाँ हस्तउद्योग की नाना चीजों को बनाकर बेचती है, साथ ही साथ अपने पुरुषो के लिए कुफियागीरी भी करती है । गुजरात में वाघरी, मदारी, नट, नायका, कठपुतली का खेल दिखानेवाले, लुहारिया आदि जातियों के लोंगों को इसी समवर्ग में रखा गया है अन्य जातियों में कंन्जर, सांसी, मोगिया, बावरी वगैरा जातियों के लोग आते है जो अपनी अपराधीवृत्तियों के लिए कुख्यात है । नट और कुचबंध भी इसी कोटि मे गिने जाते है । डॉ. रांगेय राघव द्वारा प्रणित "कब तक पुकारू" उपन्यासमें राजस्थान की कर्नट जाति के लोगो के जीवन को चित्रित किया गया है । उनकी स्त्रियों को समाज के लोग कारीन्दे हुक्काम तथा पुलिस के अधिकारी उनकी स्त्रियों का यौन शोषण करते है । उन लोगों ने भी इसे अपनी नियति के रूप में स्वीकार कर लिया है । डॉ. रामकुमार भ्रमर के उपन्यास "कांच घर" में महाराष्ट्र में तमाशा दिखानेवाली बाईयो के जीवन को आकलित किया है । तमाशावाली बाईयो को भी समाजमें इज्जत की दृष्टि से नहीं देखा जाता और उच्चवर्ग उनका यौन शोषण करते रहते है । इस उपन्यास में रामकुमार भ्रमरने बताया है कि नौटंकी तमाशा आदि में काम करनेवाले "खाने कमानेवाले लोग" माने जाते है । प्रसाशकीय प्रयत्नो से उन्हें "कलाकार" पद तो मिला है, परंतु समाज में उन्हें आज भी हेय दृष्टि से देखा जाता है एक भीड़ का मनोरंजन करना और कई बार कुछ धनिको की रंगीनियों का साधन बनना उनकी क्रूर नियति के साथ जुड़ा हुआ है । गाँव-खेड़े के छोटे मोटे स्थानिय नेताओं - मुकुंदराव और शंकरराव बेलापरकर - से लेकर पुलिस कमिश्नर तक को उन्हें खुश करना पड़ता है अन्यथा उन्हें "म्यादखतमी"का नोटिस दे दिया जाता है । [३] अतः समाज की दृष्टिमें संच (तमाशा) रंडीखाना व भडवाखाना ही माना जाता है । उपन्यास का एक पात्र कहता है -

"तमाशेवाले औरत का क्या विश्वास । वह साली पंचायत का दफ्तर होती है । मोची से लेकर पंडित तक उसमे जा सकता है । वह सबकी है और किसी की नहीं ।" [४] माला के शब्दोमें संच की और "नहाने का

पानी''[५] है। और नहाने व पीने के पानी में हंमेशा अंतर किया जाता है।

डॉ. रांगेयराघव कृत ''कब तक पुकारू'' में कर्नटो के जीवन को चित्रित किया गया है। इस उपन्यास में प्यारी सुखराम की बीवी है। वह बहुत सुंदर नटखट और नखरेबाज है अतः दारोगा की ओर से ''बुलावा'' आ जाता है। सुखराम इसे पसंद नहीं करता, अतः प्यारी उसके लिए ''ननानुच'' करती है। तब प्यारी की माँ उसे समझाती है - ''औरत का काम औरत का काम है। इसमे भला बुरा क्या ? कौन नहीं करती। नहीं तो मारमार कर खाल उधेड देगा दरोगा। और तेरे बाप और खसम दोंनो को जेल भेज देगा तो फिर कमेरा न रहेगा तो क्या करेगा ? फिर भी तो पेट भरने के लिए यही करना होगा ?''[६]

अभिप्राय यह कि इस वर्ग की स्त्रियों का यौन शोषण उच्चवर्गों के लोगो द्वारा होता है। इसे वे जन्मसिद्ध अधिकार समझते है।

(४) आदिम जनजातियाँ : ---

भारतीय संविधान के अनुच्छेद ३४२ के अनुसार आदिम जनजातियों को ''अनुसूचित जनजातियाँ'' (Scheduled Caste) संज्ञा दी गई है।[७] भारतीय संविधान में कुल मिलाकर ऐसे ५५० जनजातियों के अनुसूचित जनजाति के रूप में घोषित किया गया है।[८] प्रसिद्ध समाजशास्त्री डॉ. घुरये ने उन्हें तथाकथित आदिवासी (Socalled Aborigence) अथवा ''पिछड़े हुए हिन्दु'' नाम दिया है। आदिम जाति या tribe शब्द की परिभाषा देशकाल सापेक्ष होने से बदलती रही है। साधारण तौर पर ये माना जाता है कि किसी भी आदिम जाती की अपनी विशिष्ट भाषा समाज व्यवस्था और संस्कृति होती है। प्रत्येक आदिमजाति एक निश्चित क्षेत्र में निवास करती है लोग स्वयं को अपने किसी पूर्वज की संतान मानते है। एकांतवास के कारण उनका विकास अवरूद्ध हो गया है। वे मुख्यधारा से कट गये है। उनकी दृष्टि अतीत से जुडी हुई है, फलतः अन्य समाजों की आधुनिक प्रगति से वे अलग थलग

पडे हुए है। उनके लिए वन्य जाति या वनवासी शब्द भी प्रयुक्त होते रहे है, परंतु यह एक भ्रामक धारणा है क्योंकि सभी आदिवासी वनो में ही नही रहते। डॉ. रिवर्श ने जनजाति को परिभाषित करते हुए कहा है - "यह एक साधारण प्रकार का सामाजिक समूह है जिसके सदृश्य एक सामान्य बोली का प्रयोग करते है युद्ध आदि जैसे सामान्य रूप से सम्मिलित कार्य करते है।" [१०] डॉ. बी.एस.गुहाने भारत की आदिम जनजातियों को तीन मुख्य प्रादेशिक क्षेत्रो में बांटा है - (१) उत्तर पूर्वी क्षेत्र (२) मध्यवर्ती क्षेत्र (३) दक्षिण क्षेत्र। [११]

भारतवर्ष में ये जनजातियाँ विभिन्न क्षेत्रों में फैली हुई है मुख्यरूप से मध्यप्रदेश, बिहार, राजस्थान, उडीसा बंगाल, आसाम, केरल, आंध्र, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, गुजरात आदि राज्यों के क्षेत्र इनके प्रमुख निवास है। ये अधिकांशतः पहाडो और जंगलो में रहते हैं। इनके रहन-सहन का स्तर बहुत ही आदिम और पिछडा हुआ है। इधर बाहरी संपर्क से इनमें कुछ परिवर्तन आना प्रारंभ हो गया है, सरकार भी इनके स्तर को ऊँचा उठाने के लिए भारतीय जनजातियों के विशेष लक्षणों का विश्लेषण डॉ. राजीवलोचन शर्मा ने किया है। वे भारतीय जनजातियों के निम्नलिखित विशेष लक्षण मानते हैं - (१) ये अनागरिक आरण्यक वासी है। (२) ये सभ्यता की दौड में पिछडे हुए है। (३) ये लिपि रहित भाषा-भाषी है। ये विलक्षण रीतिरिवाजो के पोषक है। (४) ये नये कि प्रति आकर्षित नहीं होते। [१२]

प्रमुख भारतीय जनजातियों में संथाल, भील, नागा, गोंड, थोरोप, खस, खासी आदि है। गुजरात में भील, वसावा, दुबणा, नायका, कूकणा, वारली, निनामा, घोडिया कोलचा, आदिजातियों को इस समवर्ग में रखा गया है।

ऊपर डॉ. बी.एस.गुहा के एतद विषयक वर्गीकरण का उल्लेख किया गया है उन्होंने उत्तर पूर्वी क्षेत्र में अका, डफला, मिरी, अपातमी, मलोंग, मिनियोंग, पासी, पदम, पंगी, बिसमी, खमटी, सिंहली, नागा आदि जनजातियों का उल्लेख किया है। मध्यवर्ती क्षेत्र में डॉ. गुहा मध्यप्रदेश, उतरीय महाराष्ट्र, दक्षिणी राजस्थान दक्षिणी उतर प्रदेश, बिहार, उडीसा,

बंगाल आदि को समेट लेते है और वहाँ की जनजातियों में वे संथाल, मुंडा, उराँव, बिरहौ, बोरों, खोड, सबरा, जुवाँग, गोड, कोल, कोरकु, कमार, मुँझीया, भील, चेचुँ, कोलम, कोया, राजगोंड आदि का उल्लेख करते है। तीसरे वर्ग में उन्होंने दक्षिणी पश्चिमी क्षेत्र को लिया है और उनकी जनजातियों में वे कोरगा यूरूव, ईरूल, पणिचंद कुरूम्ब, काडर, कणिक्थर, मलपंतरम्, टोडा, बडगा, कोटा आदि का उल्लेख करते है।[१३]

अस्पृश्य जातियाँ :---

उपर जिन अनुसूचित जाति (Scheduld caste) और अनुसूचित जनजाति (Scheduld tribe)आदि का जो उल्लेख किया गया है उनमें अनुसूचित जाति के लोगों को अधिकांशतः अस्पृश्य माना गया है और उनके उपर तरह-तरह की निर्योग्यताओं को (Disablities) थोपा गया है। इस संदर्भ में डॉ. के.एन. शर्मा लिखते है- 'अस्पृश्य जातियाँ वे है जिनके स्पर्श से एक व्यक्ति अपवित्र हो जाय और उसे पवित्र होने के लिए कुछ कृत्य करने पडे।'[१४] डॉ. जे.एच.हट्टन ने भी इस क्षेत्र में शोधकार्य किया है। वे 'Caste in India' नामक ग्रंथमें अस्पृश्यजातियों के विषयमें कुछ निर्देश दिये हैं, आपने उन लोगों को अस्पृश्य माना है जो (अ) उच्चस्थिति के ब्राह्मणों की सेवा प्राप्त करने के अयोग्य हों,(ब) सवर्ण हिन्दुओंकी सेवा करनेवाले नाईयों,कहारों तथा दर्जियों की सेवापप्ने की अयोग्य हों (क) हिन्दू मंदिरों में प्रवेशप्राप्त करने के अयोग्य हों (ड) सार्वजनिक सुविधाओं (पाठशाला, सड़क तथा कुँआ) को उपयोग में लाने को अयोग्य हो और (इ) घृणित पेशे से पृथक होने के अयोग्य हों।[१५]

डॉ.डी.एन.मजुमदार के अनुसार अस्पृश्यजातियाँ वे हैं जो विभिन्न सामाजिक एवं राजनीत के निर्योग्यताओं से पीड़ित है, जिनमें से बहुत-सी निर्योग्यताए उच्च जातियों द्वारा परम्परा रूप से निर्धारित और सामाजिक रूप से लागू की गई है।[१६]

अतः कहा जा सकता है कि उल्लिखित दलित जातियों में सर्वाधिक निर्योग्यताएँ अस्पृश्य जातियों पर थोपी गई है अतः दलितो में भी उनकी स्थिति अधिक निम्न कोटि की समझी जानी चाहिए।

अस्पृश्य जातियों पर थोपी गई निर्योग्यताये :---

जैसा कि ऊपर कहा गया है, दलितजातियों में अस्पृश्य कही जानेवाली जातियों पर सर्वाधिक निर्योग्यतायें थोपी गई। इन निर्योग्यताओं के कारण उन्हें जीवन में आगे बढ़ने और अपने व्यक्तित्व के विकास का कोई अवसर नहीं मिला। ये निर्योग्यतायें उनके लिए अभिशाप प्रमाणित हुई। फलतः उन्हें दासों से भी गया-गुजरा जीवन बिताने पर मजबूर होना पड़ा। उनके तमाम प्रकार के सुख से वंचित रखा गया अस्पृश्य पर थोपी गई ये निर्योग्यतायें १९ वीं शताब्दि के अंत तक लगभग चालु रही। २०वी शताब्दि के आरंभ से सुधारवादी आंदोलनो के कारण तथा स्वाधीनता के उपरांत सरकारी प्रयत्नो के फलस्वरूप इनमें कुछ कमी आयी है, परंतु दूरदराज के गाँवो में तो स्थिति आज भी विकट है। स्मृतियों, पुराणों तथा धर्मग्रंथो में अस्पृश्य जातियों पर निम्नलिखित चार प्रकार की निर्योग्यतायें थोपी गई है- (१) धार्मिक निर्योग्यतायें (Religious disabilities); (२) सामाजिक निर्योग्यतायें (Social disabilities); (३) आर्थिक निर्योग्यताये (Economic disabilities); (४) राजनीतिक निर्योग्यतायें (Political disabilities) .

(१) धार्मिक निर्योग्यतायें (Religious disabilities) :---

ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र के उद्भव के संदर्भ में कहा गया है-

''ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद बाहू राजन्यः कृतः।

उरू तदस्य यद्वैश्यः पदभ्यां शूद्रोऽजायत ।।''[१७]

अर्थात् ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से, क्षत्रिय बाहु से और वैश्य उरू अर्थात जांघ से तथा शूद्र पैंरो से उत्पन्न हुए। पैंरो से उत्पन्न होने की मान्यता के कारण शूद्रों को समाज में निम्न स्थान मिला। इस प्रकार तीन उच्च वर्णों की सेवा करनेवाले सामाजिक वर्ग के रूप में शूद्रों को प्रथम उल्लेख ऋग्वेद में उपयुक्त पुरूषसूक्त में आया हैं, बाद में उसकी पुनरावृत्ति अर्थवेद के १९वें भाग में हुई है। डॉ.आंबेडकर की यह मान्यता रही है कि ब्राह्मणों और क्षत्रियों के पारस्परिक संघर्ष में जो वर्ग कमजोर पड़ गया वह शूद्रों में परिगणित होता चला गया।[१८]

समाज में निम्नतम कोटि में आने के कारण अस्पृश्यों पर निम्नलिखित निर्योग्यतायें थोपी गई है : --

(क) मंदिर प्रवेश तथा पवित्र स्थानों के उपयोग पर प्रतिबंध- अस्पृश्य जातियों को अपवित्र माना गया, फलतः उनको मंदिर में जाने नहीं दिया जाता था। यदि कोई अस्पृश्य भूलचूक से मंदिर में चला जाय तो उसकी बुरी तरह से पिटाई होती थी। कुछ वर्ष पूर्व बम्बई में एक पुलिस कोन्स्टेबल जो सिडयूलकास्ट का था, बारिश से बचने के लिए एक मंदिर में चला गया तो ज्ञात होने पर उसकी हत्या कर दी गई थी। ओमप्रकाश वाल्मिकी के आत्मकथनात्मक उपन्यास ''जूठन'' में ऐसे कई प्रसंग आते है मंदिर प्रवेश के अलावा, पवित्र नदी-घाटो के उपयोग, पवित्र स्थानों पर जाने तथा अपने ही घरों में देवी देवताओं की पूजा करने पर रोक लगा दी गई। उनको वेदो तथा अन्य धार्मिक ग्रंथो के अध्ययन एवं श्रवण की भी आज्ञा नहीं थी। यदि किसी के कानों में वेदवाक्य पड़ जाय तो गरम घघकता हुआ शीशा उसके कानों में डाला जाता था। उनको सार्वजनिक स्मशानघाटो पर अपने सम्बंधियों को अग्नि संस्कार की देने की भी स्वीकृति भी नहीं थी। गुजरात के कई गाँवो में आज भी इनके स्मशान अलग है और वे लोग शव को अग्निदाह नहीं देते, अपितु मुस्लमानों और ईसाईयों की तरह वे शव को जमीन में दफना देते है।

(ख) अस्पृश्यजातियों को धार्मिक सुख-सुविधाओं से भी वंचित रखा

जाता था। उच्चवर्गीय सवर्ण हिन्दुओं को आदेश दिया गया था कि वे सभी प्रकार के धार्मिक कार्यों से अस्पृश्यों को पृथक कर दें। मनुस्मृति में बतलाया गया है कि अस्पृश्यों को किसी प्रकार की राय न दी जाय, न ही उसे भोजन का शेष भाग भी दिया जाय, न ही उसे देव भोग का प्रसाद भी मिले, न उसके समक्ष पवित्र विधान की व्याख्या की जाय, न उस पर तपस्या या प्रायश्चित का भार ही डाला जाय। इतना ही नहीं अस्पृश्यों को किसी प्रकार से धार्मिक कार्यों में सहायता करनेवालों के लिए या इन कार्यों के संदर्भ में उनसे सहानुभूति रखनेवालों के लिए भी ऐसा विधान किया गया है कि वह जो किसी अस्पृश्य के लिए प्रवित्र विधान की व्याख्या करता है अथवा तपस्या या प्रायश्चित करने को बाध्य करता है वह व्यक्ति उस अस्पृश्य के साथ स्वयं भी असंवृत नामक नरक में डूब जायेगा। [११] इस प्रकार अस्पृश्यों को पूजा आराधना भागवत भजन कीर्तन आदि का अधिकार नहीं दिया गया है। ब्राह्मणों को इनके यहाँ पूजा श्राद्ध तथा यज्ञ आदि कराने की आज्ञा नही दी गई है। शैलेश मटियानी की ''प्रेत मुक्ति''नामक कहानी इसी विचार सूत्र को लेकर लिखी गई है।

(ग) अस्पृश्यों पर धार्मिक संस्कारों के संपादन पर भी प्रतिबंध लगाया गया है। उनको जन्म से ही अपवित्र मानने के कारण उनके लिए शुद्धिकरण के संस्कारो को अनावश्यक माना गया और उस प्रकार के संस्कारो की धर्मशास्त्र में कोई व्यवस्था नही। धर्मग्रंथो में अन्य हिन्दू के लिए सोलह प्रमुख संस्कारो का उल्लेख मिलता है। परंतु अस्पृश्य लोगों को इन संस्कारो की कोई आवश्यकता नहीं है ऐसा धर्मशास्त्रो द्वारा कहा गया है अतः उनमें विद्यारंभ, उपनयन, चुडाकर्म जैसे संस्कार नहीं मिलते।

(२) सामाजिक निर्योग्यताये (Social disabilities) : ---

अनुसूचित जातियों या अस्पृश्य जातियों पर नाना प्रकार की सामाजिक निर्योग्यताओं को थोपा गया है जो संक्षिप्त मैं इस प्रकार है :--

(क) सामाजिक संपर्क पर रोक :---

सवर्ण हिन्दुओं के साथ सामाजिक संपर्क पर रोक लगा दी गई थी अस्पृश्यों को संमेलनो उत्सवों गोष्ठियों और पंचायतो तथा अन्य सामाजिक समारोहों में भाग लेने की आज्ञा नहीं दी थी उन्हें उच्च जाति के हिन्दुओं के साथ खानपान का संबंध रखने से भी वंचित रखा गया अस्पृश्यों की छाया तक को अपवित्र माना गया और उन्हें सार्वजनिक स्थानों के उपयोग की आज्ञा नहीं दी गई । उनके दर्शन मात्र से सवर्ण हिन्दू के अपवित्र हो जाने की आशंका के कारण अस्पृश्यों को अपने कई कार्य रात्री में ही करने पड़ते थे दक्षिण भारत में कई स्थानो पर तो सड़को पर चलने तक का अधिकार नहीं था, यह पहले निर्दिष्ट किया गया है कि दक्षिण के कुछ राज्यों में अस्पृश्य जातियों से उच्च वर्णीय लोग ३६,४८,७२ फीट की दूरी से अपवित्र हो जाते थे ।

(ख) सार्वजनिक वस्तुओं के उपयोग पर प्रतिबंध : ---

अस्पृश्यों को अन्य हिन्दुओं के द्वारा काम में लिये जाने वाले कुँओं से पानी नहीं भरने दिया जाता था । तालाब या नदी हो तो उनका घाट अलग रखा जाता था उनके बच्चों को सार्वजनिक स्कूलोमें पढ़ने एवं छात्रावासों में रहने की व्यवस्था नहीं थी जिन चीजों का उपयोग उच्च जाति के लोग करते थे उन चीजों और वस्तुाओं का प्रयोग करने की छूट उन लोगों को नहीं थी । उदाहरणतया ये लोग पीतल तथा कांसे के बर्तन का प्रयोग नही कर सकते थे । वे लोग अच्छे वस्त्र एवं सोने के आभूषण नहीं पहन सकते थे दुकानदार इन्हें सामान नही देते, धोबी इनके कपडे नही धोते, नाई उनके बाल नहीं बनाते, कहार उनका पानी भरते थे उन्हें अन्य सवर्ण हिन्दुओं की बस्ती या मुहल्ले में रहने तक की आज्ञा नहीं थी । गाँव में उनकी बस्तियाँ गाँव से बाहर अलग-अलग रहती थी जिनको चमादडी, चमरौटी या डुम्योल कहा जाता था ।

(ग) शिक्षा और मनोरंजन सम्बन्धी सुविधाओं से वंचित : ---

न केवल अस्पृश्यों को बल्कि अन्य शूद्रों तक को शिक्षा प्राप्त करने की आज्ञा नहीं दी गई उन्हें चौपालों, मैलों तथा हाटो में सामिल होकर मनोरंजन करने का अधिकार भी प्राप्त नहीं था। इसका दूरंगामी परिणाम ये हुआ कि समाज का बहुत बड़ा वर्ग निरक्षर रह गया और मुख्याधारा से कट गया। भारत की पराधीन के कारणों की पड़ताल इन्हीं स्थितियों की पृष्ठभूमि में कर सकते है।

(घ) अस्पृश्यों के भीतर भी संस्तरण (Hierarchy) : ---

एक आश्चर्यजनक आघातजनक एवं बिडम्बना पूर्ण स्थिति यह भी है कि खुद अस्पृश्यों के यहाँ भी संस्तरण की प्रणाली प्रचलित है। वहाँ भी उँच-नीच का भेद भाव पाया जाता है। संपूर्ण देश का विचार करें तो ये लोग प्रायः ३०० से अधिक जातिय समूहों में बटे हुए है जिनमें से प्रत्येक समूहों की स्थिति एक दूसरे से उँची या नीची बतायी गई है। इस संदर्भ में डॉ.के.एम.पणिकर का कहना है - ''विचित्र बात यह है कि स्वयं अछूतो के भीतर एक पृथक जातिके समान संगठन था।... सवर्ण हिन्दू के समान उनमें भी बहुत उच्च और निम्न स्थितिवाली उपजातिवाली संस्तरण था, जो एक-दूसरे से श्रेष्ठ होने का दावा करती थीं।'' [२०] वस्तुतः ऐसा प्रतित होता है कि सवर्णो ने अपनी अन्याय पूर्ण जाति व्यवस्था को और उसके संस्तरण को न्यायिक प्रमाणित करने हेतु निम्न जातियों को इस दिशा में प्रेरित किया हो, अथवा सवर्णो जातियों के संस्तरण को देखकर उनकी नकल के रूप में निम्न जातियों ने इसे अंगीकृत किया हो, क्योंकि यह ज्यादातर देखा गया है कि निम्नजाति के लोग उच्चजाति के लोगो का अनुसरण करने में गौरव का अनुभव करते है। इस प्रकार निम्न जातियों को संगठित होने से रोकने का यह एक षडयंत्र भी हो सकता है।

(च) अस्पृश्य एक पृथक समाज के रूप में : ---

अस्पृश्य जातियों को अन्य जातियों से हंमेशा अलग-अलग रखा गया है। इस वर्ग के लोग मुख्यधारा से पृथक रहें इस हेतु उन पर कई सामाजिक निर्योग्यताओं के लोग सदैव पीड़ित रहे है। प्रसिद्ध इतिहास का डॉ.के.एम.पणिकर इस संदर्भ में लिखते है - ''जाति व्यवस्था जब अपनी यौवनावस्था में क्रियाशील थी, उस समय इन अस्पृश्यों (पंचम्‌वर्ण) की स्थिति कई प्रकार से दासता भी खराब थी। दास कम से कम एक स्वामी के ही अधीन होता था और इसलिए उसके अपने स्वामी के साथ व्यक्तिगत संबंध होते थे। लेकिन अस्पृश्यों के परिवार पर तो गाँव भर की दासता का भार होता था। व्याक्तियों के दास रखने की बजाय, प्रत्येक ग्राम के साथ कुछ अस्पृश्य परिवार एक किस्म की सामूहिक दासता के रूप में जुडे हुए थे। उच्च जातियों का कोई भी व्यक्ति किसी भी अस्पृश्य के साथ व्यक्तिगत संबंध नहीं रख सकता था।''[२१] इस प्रकार हम देख सकते है कि सामूहिक दासता की यह पद्धति व्यक्तिगत दासता से कई गुना ज्यादा अन्याय पूर्व एवं अमानवीय है। यहाँ तो गाँव का कोई भी व्यक्ति किसी को भी दबा सकता है, उसका शोषण कर सकता है। प्रेमचंद की ''सदगति'' कहानी में हम इस अमानवीय प्रथा के दुष्यरिणामों को देख सकते है। शैलेश मटियानी द्वारा प्रणीत कहानी ''प्रेत मुक्ति'' में व्यक्ति दासता के सुखद पहलू को लेखक ने रेखांकित किया है।

(३) आर्थिक निर्योग्यतायें (Economic disabilities) : ---

अस्पृश्य जातियों को धर्मशास्त्र परंपरा के तहत ऐसे कार्य सुपुर्द किये गये जो उच्चजाति के सवर्ण हिन्दू नहीं करते थे। इन कार्यों के लिए ही उनको गाँवो और नगरों में बसाया जाता था इन कार्यों के लिए उन्हें धन नहीं दिया जाता था। फटे पुराने वस्त्र, त्याज्य वस्तुओं तथा जूठा भोजन

(बचाखुचा) भोजन देकर उनसे ये सब कार्य करवाये जाते थे, उनकी आर्थिक दृष्टि से हमेशा ऐसे स्तर पर रखा जाता था कि सदैव वे परमुखापैक्षि बने रहे। समाज व्यवस्था ही ऐसी थी कि कभी दो पैसे उनके पास एकत्रित नहीं हो सकते। ये सब करने के लिए उन पर नाना प्रकार की आर्थिक निर्योग्यतायें थोपी गई थी जिनको बहुत संक्षिप्त में प्रस्तुत करने का हमारा उपक्रम है :--

(क) व्यावसायिक निर्योग्यता : ---

वैसे मानवता धर्म के नाते किसी भी मुनष्य को यह स्वतंत्रता होनी चाहिए कि वह अपने पसंद के व्यवसाय को अंगीकृत कर सके जिसमें दूसरे किसी व्यक्ति या समाज का अहित न हो सके। परंतु हमारे यहाँ हजारो वर्षों तक अस्पृश्यजातियों पर इस संदर्भ में बहुत सी निर्योग्यतायें थोपी गई। वे लोग मलमूत्र उठाने, सफाई करने, मरे हुए पशुओं को ढोने, पशुओं के चमडे उतारने और कमाने, चमडे की वस्तुयें बनाने के काम ही कर सकते है। ये लोग अपने इन परंपरागत कार्यों को छोड कर अन्य कार्य नही कर सकते थे कोई अस्पृश्य चाहे कि वह दूसरा व्यवसाय कर ले तो वह उन दिनो संभव नही था। 'शंबूक'का उदाहरण इस संदर्भ में विशेषतया स्मरणीय हो सकता है। डॉ.जगदीश गुप्त द्वारा प्रणीत 'शंबूक'काव्य को इस संदर्भ मे देख जाना चाहिए। उल्लेखित कार्यों के अतिरिक्त इन लोगो से आवश्यकता अनुसार बेगार करवायी जाती थी।

(ख) संपति सम्बंधी निर्योग्यतायें : ---

व्यावसायिक निर्योग्यता के अलावा इस वर्ग के लोगों पर संपत्ति सम्बन्ध अनेक निर्योग्यतायें डाली गई। उनको भूमिधारण के अधिकार से वंचित रखा गया , जगदीशचंद्र ने अपने उपन्यास का शीर्षक ''धरती धन न अपना'' इसी लिए रखा है। इस वर्ग के लोगो को धन संग्रह की भी आज्ञा नहीं थी। डॉ.रामविलास शर्मा ने अपने ग्रंथ ''मार्क्स

और पिछड़े हुए समाज'' में मुनस्मृति का हवाला देते हुए लिखा है कि शूद्रों के धनसंग्रह करने से ब्राह्मणों को पीड़ा होती है।[२२] अस्पृश्यों का काम तो केवल उच्च वर्ग की सेवा करना है उनके पास किसी भी स्थिति में संपति संग्रहीत न हो इसलिए धर्म और समाज के ठेकेदारों ने कुछ ऐसे नियम बनाये थे। वे लोग स्वर्ण जैसी मूल्यवान धातुओं को नहीं खरीद सकते। सोना चाँदी के अलंकार नहीं धारण कर सकते। तांबा कासा पित्तल के बर्तन नहीं बसा सकते और यदि कोई ऐसा करने का साहस करे तो उसे तरह तरह से प्रताड़ित किया जाता था। संपति संम्बन्धी इस निर्योग्यता से द्रवित होकर ही आचार्य विनोबाभावे ने इस भूमिहीन लोगो के लिए 'भूदान' आंदोलन चलाया था।

(ग) भरपेट भोजन की भी सुविधा नहीं : ---

सहस्रादिक वर्षों से अस्पृश्य जाति का आर्थिक दृष्टि से शोषण हुआ है। उन्हें घृणित से घृणित प्रकार के व्यवसाय अपनाने के लिए बाध्य किया गया और बदले में उतना भी नहीं दिया जाता कि कभी भरपेट भोजन कर सके। अपनी सेवाओं के बदले में लोग उनको अपने घर का बचाखुचा जूठा भोजन देते थे। आज भी गुजरात के कई गाँवो में इस वर्ग के लोग रात के समय 'मेणा' लेने के लिए निकल पड़ते थे। कहने की आवश्यकता नहीं है कि 'मेणे' के रूप में उनको जूठा-वासी भोजन ही मिलता था। अस्पृश्यों लोग इस व्यवस्था से संतुष्ट रहे इस हेतु उनको बराबर यही कहा और समझाया जाता था कि यदि इस जनम में वे अपने उतर दायित्व का ठीक-ठीक पालन नहीं करेंगे तो उनका अगला जीवन और भी निम्न कोटि का होगा।[२३]

(४) राजनीतिक निर्योग्यतायें (Political disabilities) : ---

अस्पृश्य जातियों को राजनीतिक के क्षेत्र में भी सब प्रकार के अधिकारों से वंचित रखा गया। उन्हें शासन के कार्य में भी किसी भी प्रकार का

हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं था, नहीं वे कोई सुझाव दे सकते थे, सार्वजनिक सेवाओं के लिए नौकरी प्राप्त करने का भी कोई अधिकार नहीं था, क्योंकि ये सब व्यवसायों जैसा कि पहले निर्दिष्ट किया गया, उनके लिए वर्जित ही थे। अतः जब के किसी भी महत्व पूर्ण स्थान पर नहीं होगे उन्हें हस्तक्षेप करने या सुझाव देने की आवश्यकता ही कहाँ पड़-सकती है। उनको कोई भी व्यक्ति अपमानित कर सकता था मारपीट कर सकता था और ऐसे व्यवहारों के विरुद्ध सुरक्षा पाने का भी कोई अधिकार नहीं था सामान्य अपराध के लिए भी उन्हें कठोर दंड दिया जाता था। एक ही प्रकार के अपराध में ब्राह्मण को सामान्य प्रकार की सजा होती थी जब कि अस्पृश्य को उसके लिए कठोर दंड दिया जाता था। जगदीशचंद्र के उपन्यास ''धरती धन न अपना'' में चौधरी हरनामसिंह अकारण चमादडी में जाकर दो-चार चमार युवकों की पिटाई कर देता है। इस संदर्भ में लेखक की टिप्पणी है- ''चमादडी में ऐसी घटना कोई नयी बात नही थी। ऐसा अक्सर होता रहेता था। जब किसी चौधरी की चोरी कर जाती या बरबाद हो जाती या चमार चौधरी के अंदर जमीन की मलकियत की अहेसास जोर पकड़ लेता तो वह अपनी शाख बनाने चौधर बनवाने के लिए इस मोहल्ले में चला जाता। यहाँ किसी भी व्यक्ति के पीटने के कारणो में उसका चमार होना ही पर्याप्त माना जाता है।''[२४] ब्रिटिश राज्य में स्थानिक स्वराज्य की जो संस्थायें स्थापित हुई उसमें इस वर्ग को सर्वप्रथम यह राजनीतिक अधिकार मिला कि पंचायत में इस वर्ग के एक सभ्य के स्थान को आरक्षित कर दिया। इस अधिकार के कारण इस वर्गका नैतिक बल कितना उपर उठा उसका मर्मस्पर्शी चित्रण शैलेश मटियानी की कहानी ''घुघुतिया त्यौहार'' में किया गया है।

नवजागरण की भूमिका

भारत में आधुनिकता के प्रचार पसार में नवजागरण के आंदोलन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उपर जिन निर्योग्यतायों की बात कही गई है,

उनके खिलाफ एक सैद्धान्तिक जेहाद छेड़ने का कार्य नवजागरण के माध्यम से हुआ। नवजागरण के अग्रदूतो मे ब्रह्मसमाज के स्थापक राजाराममाहेनराय का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय रहेगा। भारत में ईसाइयत का प्रचार ईसाई पादरियों द्वारा भारतीय धर्मों की निंदा, युरोप के क्रांतिकारी बुद्धिवादी विचार और अंग्रजी पढ़े-लिखे हिन्दुओं द्वारा हिन्दूत्व की भर्त्सना या निंदा, ये कुछ ऐसे कारण थे जिनसे हिन्दूत्व की नींद तूटी उसकी पहली अंगडाई ब्रह्मसमाज में प्रगट हुई और उसके नवउत्थान के आदि पुरूष राजाराममोनराय ही माने गये।[२५]

ईसाई पादरी हिन्दूधर्म की छिछालेदर कर रहे थे। वे हिन्दूधर्म से जुड़े हुए उन मुद्दो पर प्रहार कर रहे थे जो मानवता, बुद्धिवाद आदि की दृष्टि से कतई अनुमोदनीय नहीं थे राजाराममोहनराय इससे बहुत दुःखी थे। एक स्थान पर उन्होंने कहा है कि - ''यह स्वाभाविक बात है कि जब एक जाति दूसरी जाति पर विजयप्राप्त करती है तब उसका अपना धर्म चाहे जितना भी हास्यास्पद हो, किन्तु हँसी वह उनके धर्म की उड़ाया करते है, जो उसके पाँव के नीचे आये हुए है। उदाहरणार्थ, मुस्लमानों ने जब भारत को जीता, तब हिन्दूओं के धर्म के प्रति उन्होंने शत्रुता दिखलाई। चंगेश खाँ के अनुयायी स्वयं तो ईश्वरहीन एवं स्वभाव में जंगली जानवरो के समान थे, किन्तु जब वे पश्चिमी भारतमें आये, तब उन्होंने वहाँ के लोगों की आस्तिकता एवं परलोक समबन्धी के विश्वासो का काफी मजाक उड़ाया। प्राचीनकाल के यूनानी और रोमन लोग मूर्ति पूजक थे। एवं उनके जीवन में पापाचार का भी आधिक्य था। किन्तु, वे अपनी यहुदी प्रजा के धर्म की खिल्ली उड़ाते थे, क्योंकि यहुदी जनता एकेश्वरवाद में विश्वास करती थी इसीलिए आज अंग्रेज धर्मप्रचारक, जो विजेतावर्ग के है भारत वर्ष के धर्म की भर्त्सना करते है अथवा उसका मजाक उड़ाते है तो यह कोई साधारण बात नहीं है।''[२६]

परंतु इसका अर्थ यह कतई नहीं है कि राजाराममोहनराय हिन्दू धर्म में घर कर गई जड़ता के पक्षधर थे, वे तो जड़ता को जड़ समेत उखाड फेंकना चाहते थे। हिन्दुत्व का ऐसा कोई भी रूप उन्हें मान्य नहीं था जो तर्क-विज्ञान, बुद्धिवाद की कसौटी पर खरा न उतरा हो। इस संदर्भ

में कबीर से वे तुलनीय है। राजाराममोहनराय की जीवनी लेखिका मिस कोलेट ने लिखा है- ''इतिहास में राममोहन का स्थान उस महासेतु के समान है जिस पर चढ़ कर भारतवर्ष अपने यथा अतीत से अज्ञात भविष्य में प्रवेश कर सकता है प्राचीन जाति प्रथा और नवीन मानवता के बीच जो खाई है, अंधविस्वास और विज्ञान के बीच जो दूरी है, स्वेच्छाचारी राज्यों और जनतंत्र के बीच अंतराल है तथा बहुदेववाद एवं शुद्ध ईश्वरवाद के बीच जो भेद है, उन सारी खाईयों पर पुल बाँधकर भारत को प्राचीन से नवीन की ओर भेजनेवाले नवीन पुरूष राममोहनराय है।''[२७]

२० अगस्त सन् १८२८ में राजाराममोहनराय ने ब्रह्मसमाज की स्थापना की। इस ब्रह्मसमाज के द्वारा उन्होंने जातिवाद और मूर्तिपूजा का विरोध किया सतीप्रथा, बालविवाह, विधवाविवाह निषेध, अनमेल विवाह, नारी शिक्षा निषेध इत्यादि कुप्रथाओं का भी उन्होंने जोर शोर से विरोध किया। इस प्रकार ब्रह्मसमाज के द्वारा उन्होंने हिन्दूधर्म का एक रूप रखा जिसमें मूर्ति पूजा का बहिष्कार था, अवतारों की परिकल्पना का विरोध था। इन प्रवृतियों से लोगों का ध्यान वे निराकार, निर्विकार ब्रह्म की ओर आकृष्ट करना चाहते थे जिसका निरूपण वेदान्त में हुआ है। राजाराममोहनराय के पश्चात् महर्षि देवेन्द्र नाथ तथा केशवचंद्र ने ब्रह्मसमाज की प्रवृतियों को विकसित किया। इस प्रकार जातिवाद के खिलाफ एक पृष्ठ भूमि निर्मित करने का कार्य आर्यसमाज ने किया।

सन् १८५० में बम्बई में परमहंस नामक एक संस्था की स्थापना हुई जिसका उदेश्य जातिप्रथा का भंजन था। इसके सदस्य छिप-छिपकर तथाकथित नन्हीं जातिवालों के हाथ की रसोई खाते थे और समझते थे कि छिपकर वे क्रांतिका बीज वपन कर रहे थे। इस प्रकार चोरी छिपे ही सही, परंतु जातिप्रथा का भंजन शूरू हो गया था कुछ वर्ष पश्चात् सन् १८६४ केशवचंद्र सेन बम्बई गये और उन्होंने ब्रह्मसमाज की शाखा खोलनी चाही, तब बम्बई में प्रथमतः ब्रह्मसमाजकी एक शाखा के रूप में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई। प्रार्थना समाज के चार मुख्य उदेश्य थे- (१) जातिप्रथा का विरोध (२) विधवा विवाह का समर्थन (३) स्त्री शिक्षा का प्रचार (४) बालविवाह का अवरोध।[२८] हिन्दू समाज के इन चार

दोषो पर बाहरवालों की दृष्टि सीधे ही पड़ती थी और इन दोषों का समर्थन कट्टरवादी लोग भी नहीं कर पाते थे। अतः एव सुधारवादियों ने सबसे पहले इन्हीं चार मुद्दो पर ध्यान दिया। इस प्रकार ब्रह्मसमाज तथा प्रार्थना समाज में जातिप्रथा को लेकर जो विरोध हुआ उसका सम्बन्ध आधुनिक दलित चेतना से है।

ब्रह्म समाज के नेताओं में राजाराम मोहनराय, केशवचन्द्र सेन, महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर आदि प्रमुख है। उन्होंने पुनर्जन्म, अवतारवाद, तीर्थ मंदिर मूर्तिपूजा आदि का विरोध किया। जातिप्रथा और सतीप्रथा के भी वे विरोधी थे। महाराष्ट्र में जो प्रार्थना समाज का आंदोलन चला उसमें महादेव गोंविद रानडे आगरकर, तिलक, गोखले, परशुराम आदि है। महाराष्ट्र में भक्ति का जो आंदोलन उठा था उसी के समान रानडे प्रार्थना समाज को भी सर्वत्र ले जाना चाहते थे। रानडे प्रार्थनासमाज को अशिक्षित जनता तक ले जाना चाहते थे। प्रार्थनासमाज जातिप्रथा का भी विरोध करता है। जन्मना एक मनुष्य को उत्तम और दूसरे मनुष्य को अधम मानने की प्रथा के वे घोर विरोधी थे तथा स्त्री शिक्षा और नर-नारी की समानता पर वे विशेष जोर देते थे। महाराष्ट्र के भक्ति आंदोलन के ज्ञानदेव, एकनाथ, तुकाराम, रामदास और जनार्दन पंत प्रभृति संत बहुत ही उदार मतवादी थे और उनका भी प्रभाव रानडे पर दृष्टिगत होता है। वस्तुतः रानडे उदार कट्टरवादी नहीं थे सन् १८९३ वें अधिवेशन में लाहौर में उन्होंने भाषण दिया था उसका एक अंश यहाँ उद्दत किया जा रहा हैं -
"हिन्दु जनता इतनी बुरी नहीं है की हम उसे सडांध से भरा हुआ बरबादियों का अंबार कहें। यह जनता कुछ दूर तक कट्टर अवश्य है, किन्तु इसी कट्टरता ने इसकी रक्षा भी की है। जो जाति अपने विश्वास और नैतिकता को अपने आचारों और सामाजिक आचरणों को फेशन के समान आसानी से बदल दे, वह इतिहास में बड़े उदेश्य की प्राप्ति से वंचित रहेगी। साथ ही, यह भी सच है कि हमारी कट्टरता इतनी भयानक भी नहीं है कि हम नये विचारो और नूतन प्रयोगों को अपने भीतर, धीरे-धीरे, नहीं पचा सके।"[२९]

ब्रह्मोसमाज और प्रार्थनासमाज के बाद नवजागरण की पृष्ठभूमि को तैयार करने में जिनका बहुत बड़ा योगदान है वे है स्वामी दयानंद सरस्वती। संस्कृति के क्षेत्र में भारत का आत्माभिमान सर्वप्रथम स्वामी दयानंद में बिखरकर आता है। केशवचन्द्र और रानडे की तुलना में दयानंद वैसे ही दृष्टिगत होते है जैसे गोखले जी की तुलना में लोकमान्य तिलक। स्वामी दयानंद सरस्वती में अपने धर्म और भारतीय संस्कृति को लेकर आत्महीनता का भाव नहीं है। वे उसके लिए वैदिक धर्म का आधार लेते हैं और लोगों को बताते है कि सच्चा धर्म वैदिक धर्म है, जिस पर आरूढ़ होकर हम विश्व विजयी हो सकते है। वैदिक धर्म की स्थापना के लिए वे एक ही झटके में छः शास्त्रों और अठारह पुराणों का छेद उड़ा देते है। वे लोगों को बताते है कि वेदों में मूर्तिपूजा, अवतारवाद तीर्थों और अनेक पौराणिक अनुष्ठानों का समर्थन नहीं था इन सब रूढियों का प्रवेश तो बाद में हुआ है। "रूढियों और गतानुगतिकता में फँसकर अपना विनाश करने के कारण उन्होंने भारतवासियों की कडी निंदा की और उनसे कहा कि तुम्हारा धर्म पौराणिक संस्कारों की धूल में छिप गया है। इन संस्कारों की गंदी परतों को तोड़ फेंको।" [30] वस्तुतः स्वामीजी ने अनेक क्रांतिकारी विचार प्रस्तुत किए। वे भी वर्ण को जन्मना नहीं, अपितु कर्मणा बताते है। आर्यसमाज में अवर्णों को भी यज्ञोपवित दिया जाता है; यह तो एक सर्वविदित तथ्य है। इस प्रकार जातिप्रथा का विरोध करते हुए अवर्णों को अपने पुरूषार्थ पर आगे बढ़ते हुए सवर्ण होने की वे प्रेरणा देते है। स्वामीजी के पूर्व हिन्दू धर्म में दीक्षित करने की कोई प्रणाली मिलती नहीं है। जो मूल हिन्दू है और भ्रष्ट हो गया है या विधर्मी हो गया है, उसे पुनः हिन्दू धर्म में दीक्षित करने की कोई प्रथा नहीं थी, किन्तु-स्वामी जी अनेक ऐसे विधर्मीओं को पुनः हिन्दू धर्म में दीक्षित करते है।

जिन बुराईओं के कारण हिन्दू धर्म का ह्रास हो रहा था तथा अन्य धर्म के लोग जिन दुर्बलताओं का लाभ उठाकर हिन्दुओं को ईसाई बना रहे थे उन बुराईओं को स्वामी जी ने दूर किया, जिससे हिन्दुओं के सामाजिक

संगठन को दृढ़ता प्राप्त हुई। स्वामी जी ने छुआ-छूत के विचार को अवैदिक बताया और उनके आर्यसमाज ने सहस्रों अन्त्यजो को यज्ञोपवित देकर उन्हें हिन्दुत्व के भीतर आदर का स्थान दिया। आर्यसमाज ने नारियों की मर्यादा में भी वृद्धि की ओर उनकी शिक्षा संस्कृति का प्रचार करते हुए विधवा विवाह का भी प्रचलन किया। कन्या शिक्षा का सूत्र देनेवाले भी स्वामीजी ही है। इस प्रकार हम देख सकते है कि स्वामीजी ने वेदों के आधार पर हिन्दु समाज को पुनः संगठित किया। हिन्दुओं की हीनता ग्रंथिओं को दुर किया और जातिवाद और छुआ-छुत के नाम पर हिन्दु धर्म को जो धब्बे लगे थे उनका प्रक्षालन किया।

पूर्वनिदिष्ट ब्रह्मोसमाज, प्रार्थनासमाज, आर्यसमाज इत्यादि धार्मिक सामाजिक आंदोलन के अतिरिक्त थियोसोफीकल सोसायटी या ब्रह्मविद्यासमाज का भी नवजागरण की भूमिका में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। थियोसोफी शब्द दो युनानी शब्दों के योग से बना है यूनानी में ईश्वर को "थियोस" (Theos) कहते है और "सोफिया" (Sophia) का अर्थ है ज्ञान। इस प्रकार थियोसोफी का अर्थ हुआ ब्रह्मविद्या या ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान।[३१]

वस्तुतः थियोसोफिकल सोसायटी का जन्म रूस में एक महिला के द्वारा हुआ जिनका नाम था हेलेनापेत्रोवना ब्लेवास्की। ब्लेवास्की प्रेत विद्या की जानकार समझी जाती थी। उन दिनो अमेरिका में कर्नल आलकाट नामक सज्जन भी इस विद्या में गहरी दिलचस्पी रखते थे। अतः ब्लेवास्की जब न्युयॉर्क गई तब इनका परिचय आलकाट साहब से हुआ वही पर दोंनो ने मिलकर सन् १८७५ में थियोसोफीकल सोसायटी की स्थापना की।[३२] इस थियोसोफीकल प्रवृति को भारत में आगे बढ़ाने का कार्य श्रीमती एनी बिसेन्ट ने किया। श्रीमती एनी बिसेन्टका विश्वास था कि पूर्वजन्म मे वे हिन्दू थी और हिन्दू धर्म को वे विश्व के सभी धर्मोंमें सबसे प्राचीन ही नहीं अपितु श्रेष्ठ भी मानती थी बनारस मे रहकर उन्होंने सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज की स्थापना की जिसका विकसित रूप बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय है। बनारस में रहते हुए उन्होंने गीता का अनुवाद किया, रामायण तथा महाभारत की संक्षिप्त कथाएँ लिखी तथा हिन्दू धर्म एवं संस्कृति विषयक अनेक

ओजस्वी भाषण दिये काशी में उनके व्याख्यान को सुनकर एक प्रतिष्ठित पंडित ने उनको ''सर्व-शुक्ला-सरस्वती''की उपाधि दे डाली थी। फेबियन सोसायटी के उनके सहकर्मी ज्योर्ज बर्नाल्ड शॉ ने एनी बिसेन्ट के संदर्भ में लिखा है - ''At Present she is the gratest orator in England and possiblity in Europe ।'' [३३] श्रीमती एनी बिसेन्ट ने भारत वर्ष की गरीब जनता के लिए बहुत से कार्य किये महात्मा गाँधी ने उनकी सेवाओं को बिरदाते हुए लिख है - ''जब तक भारतवर्ष जीवित है, एनी बेसिन्ट की सेवाएँ भी जिवीत रहेगी, जो उन्होंने इस देश के लिए की थी। उन्होंने भारत को अपनी जन्म भूमि मान लिया था। उनके पास देने योग्य जो कुछ भी था उन्होंने भारत के चरणो में चढा दिया था; इसलिए भारतवासियों की दृष्टि में वे उतनी प्यारी और श्रध्देया हो गयी।''[३४]

इन धार्मिक सामाजिक आंदोलनो और संस्थाओं तथा बाद में स्वामी रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानंद जैसे ज्ञानी ध्यानी और कर्मठ वेदांतियों ने हिन्दूधर्म के विशुद्ध स्वरूप को सामने रखते हुए उसके कलंक चिन्हों को धोने का कार्य किया। स्वामी विवेकानंद के संदर्भ में डॉ. रामधारीसिंह दिनकर लिखते है - ''हिन्दूत्व को लीलने के लिए अंग्रेजी भाषा, ईसाई धर्म और यूरोपीय बुद्धिवाद के रूप में जो तूफान उठा था, वह स्वामी विवेकानंद के हिमालय जैसे विशाल वक्ष से टकराकर लौट गया। हिन्दू जाति का धर्म है कि वह जब तक जीवित रहे, विवेकानंद उसी श्रद्धा से करती जाय; जिस श्रद्धा से वह व्यास और वाल्मीकि को याद करती है।'' [३५]

इस प्रकार ईसाई धर्म के प्रचार के खिलाफ भारतवर्ष में यह जो नवजागरण का आंदोलन चला उसने भारतवर्ष में दलितों मे तथा दलितेतर वर्ग में एक नयी चेतना जगाने का कार्य किया। महात्मा गाँधी, ठक्कर बापा, ज्योतिबा फुले, सावित्रीबा फूले, डॉ. बाबासाहब आम्बेडकर प्रभृति महानुभावों ने भी इस चेतना में प्राण फूंकने का कार्य किया।

अछूत समस्या और १८५७ का विद्रोह : ---

यह तो एक सर्वविदित तथ्य है कि १८५७ के विद्रोह में उच्च जाति के लोगों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। अतः उस विद्रोह को दबा देने के पश्चात् लार्ड पील की अध्यक्षता में एक अयोग की स्थापना हुई, जिसमें यह तय हुआ कि देशी भारतीय सेना में भिन्न-भिन्न जातियों और कोम के सिपाही होने चाहिए और सामान्यतया उन्हें प्रत्येक रेजीमेंट में एक साथ मिला-जुलाकर रखा जाए। इसके बाद ही भारतीय सेना से ऊँची जातियों के लोगों की संख्या धीरे-धीरे कम होने लगी।[३६] जाति प्रथा पर अंग्रेजी नीतियों के प्रभाव का आकलन करते हुए प्रो.श्रीनिवास लिखते है- ''अंग्रेजी राज्य की स्थापना होने से जातियाँ उन सीमाई बंधनो से मुक्त हो गयीं जो पहले की राजनीतिक व्यवस्था से लगे थे। इस तरह अंग्रेजी राज्य ने जाति-रूपी उस जिन्न को बोतल से मुक्त कर दिया।''[३७] १८५७ के पश्चात् भारत में सड़कों के निर्माण रेलें, डाक-तार, सस्ते कागज और छपाई आदि की जो सुविधाएँ बढ़ी उससे भी अछूतों और छोटी जाति के लोगों का फायदा हुआ और उनमें एक जातीय-चेतना का विकास हुआ। यद्यपि अंग्रेजों ने अपने हितों की रक्षा हेतु भारत की निम्न जातियों को भड़काने का काम किया, तथापि प्रकारान्तर से उन्हें कुछ लाभ तो अवश्य हुआ। अंग्रेजों ने निम्न जातियों पर होनेवाले अत्याचारों को अतिरंजित करके दिखाया ताकि विश्व के सभ्य देशों को बताया जाय कि शोषित-पीड़ित दलित तबकों की रक्षा के लिए भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवादियों का रहना कितना जरूरी और मानवीय है। उन्होंने अछूतों की संख्या भी कागज पर बढ़ा दी। अछूत जातियों को अपने पक्ष में करने के लिए उन्होंने उनको कुछ लाभ भी प्रदान किए ताकि उनके जनों को जीतकर राष्ट्रीय आंदोलन की शक्ति को कमजोर कर दिया जाय।[३८] परंतु जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया गया इससे निम्न जातियों को विशेषतः अछूत जातियों को प्रकारान्तर से कुछ लाभ पहुँचा है।

ब्राह्मसमाज और अछूत समस्या : ---

राजा राम मोहन राय जातिगत विभेदों के विरूद्ध थे लेकिन वेदों और उपनिषदों के उच्चार का काम वे भी केवल ब्राह्मणों से ही कराते थे। प्रारंभ में ब्राह्मोसमाज के लोग वेदों को अपौरूषेय मानते थे तथा जाति-पाति के उन्मूलन अंतर्जातीय विवाह आदि सामाजिक सुधारो के खिलाफ थे। [३९] परंतु बाद में केशवचंद्र सेन आदि आते हैं। उन्होंने वेदों को अपौरूषेय होने में शंका प्रकट की और ब्रह्मसभा के लोगों को जाति-पाति को न मानने तथा अन्य सामाजिक सुधारों का समर्थन करने पर जोर दिया। देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने केशवचंद्र सेन का विरोध करते हुए सन् १८६५ मे उनके सभी अनुवादियों को ब्रह्मसभा के विभिन्न पदों से हटा दिया, लेकिन केशवचन्द्र सेनने हिम्मत न हारते हुए ब्रह्मोसमाज के कार्य को और भी व्यापक फलक प्रदान किया। बारह संस्थाओं से शुरू करके उन्होंने संपूर्ण देश में एक सौ चोबीस संस्थाएँ स्थापित कर दी थी। उन्होंने सुधार की भावना को समूचे देश में फैला दिया और समाज के आंतरिक आपसी मतभेदों को बंगाल तक ही सीमित रखा। [४०]

सनातनधर्मियों से अपनी भिन्नता रेखांकित करने ब्राह्मसमाजियों ने कहा कि "हमारी भिन्नता का पहला तत्व यह है कि हमारे पंथ में एक सकारात्मक पहलू है, जिसके अनुसार पूजा आराधना की परिभाषा यह है कि ईश्वर से प्रेम किया जाय और ऐसे कार्य किए जाएँ जो ईश्वर को प्रिय है। हमारे पंथ का नकारात्मक तत्व हमें किसी भी मानव-सृजित अथवा वस्तु की पूजा करने से वर्जित करता है और यह सनातनियों से हमारी भिन्नता का दूसरा तत्व है। ये सनातनी अवतारों में विश्वास करते हैं, या मध्यस्थों, प्रतीकों अथवा किसी भी प्रकार की मूतियाँ की आवश्यकता में विश्वास करते है। हम अपनी श्रद्धा को तर्क और चेतना द्वारा पुष्ट और धर्म के मूलभूत सत्यों पर आधारित करते हैं। अपनी आत्मा तथा परमात्मा के बीच सीधे तादात्मय के रास्ते में हम किसी भी मनुष्य ग्रंथ अथवा मूर्ति को

खड़े होने की अनुमति नहीं देते ।''[४१]

इसी चिंतन-परंपरा को अग्रसरित करते हुए उन्होंने सन् १८७२ में ब्राह्मो मैरिज एक्ट बनाया जिसमें उन्होंने एकपत्नीत्व, बाल-विवाह, निषेध विधवा-विवाह और अन्तर्जातीय विवाहों का प्रावधान रखा। इनमें अंतिम प्रावधान के कारण वर्ण-व्यवस्था पर आधारित जाति-प्रथा को व्याघात पहुँचा। अछूत समस्या जाति-प्रथा का ही एक दूषित कोढ़ है, अतः उससे अछूत समस्या को लेकर तर्क शुद्ध मानवतावादी चिंतन को गति मिली। जब मूर्तिपूजा को ही अनावश्यक समझा जाने लगा तब अछूत समुदायों को धर्म-आराधना का एक नया विकल्प मिला। मध्यस्थों की सत्ता को नकारने के कारण अछूत समाज के चिंतनोन्मुख तबके में पंडा-पुरोहितों की न केवल व्यर्थता सिद्ध होने लगी। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ब्राह्मो समाज ने अछूत समस्या को लेकर प्रकट और प्रखर कदम भले न उठाये हो, परंतु उनके प्रत्यनों से जातिवादी दुर्ग में कहीं-कहीं छिद्र अवश्य हो गये। ये छिद्र आगे चलकर बढ़ते और चौडे होते गये। इस प्रकार उन्होंने दलित-चेतना के लिए पृष्टभूमिका निर्माण किया।

प्रार्थना समाज तथा अछूत समस्या : ---

ब्रह्मोसमाज के केशवचन्द्र सेन के ही प्रयत्नों के फलस्वरूप सन् १८७० में बम्बई में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई। प्रार्थना-समाज के अन्य सिद्धांतो के साथ ये सिद्धान्त भी प्रवर्तमान थे जिनका सीधा-सबंध अछूत समस्या से है- (१) ईश्वर को अच्छे लगनेवाले कार्यों को करना ही ईश्वर की सच्ची आराधना है। (२) मूर्तियों अथवा अन्य मानव-सृजित वस्तुओं की पूजा करना, ईश्वर की आराधना का सच्चा मार्ग नहीं है। (३) ईश्वर अवतार नहीं लेता और कोई भी एक पुस्तक ऐसी नहीं है जिसे स्वयं ईश्वर ने रचा अथवा प्रकाशित किया हो, अथवा जो पूर्णतः दोषरहित हो। (४) सभी मनुष्य ईश्वर की संतान है अतः उन्हें बिना किसी भेदभाव के आपस में भाई-भाई की तरह व्यवहार करना चाहिए। इससे ईश्वर

प्रसन्न होता है और यही मनुष्य का कर्तव्य है।[४२]

उक्त मान्यताओं के कारण मनुष्य और मनुष्य के बीच भेद करने वाली जाति-प्रथा पर कुठाराघात हुए। यही जाति-प्रथा तो अस्पृश्यता के मूल में थी। अतः कहा जा सकता है कि प्रार्थना समाजी अनेक कुरीतियों को समाप्त करने के पक्ष में थे और उन्होंने नीची जातिवालों को ऊपर उठाने के लिए अनेक आंदोलन भी किए थे। डॉ. के दामोदरन इस संदर्भ में अपना अभिमत व्यक्त करते हुए कहते है- ''परंतु उनके (प्रार्थना समाज वालों के) क्रिया कलाप विशाल जनसमुदाय को प्रभावित नहीं करते थे- विशेषकर उन करोड़ो असपृश्यजनों और जाति से बहिष्कृत लोगों को, जो सदियों से दासता, अपमान और उत्पीडन के शिकार थे।''[४३]

दामोदरनजी का यह निष्कर्ष सही है, क्योंकि जिस देश में अज्ञान, अशिक्षा, अंधश्रद्धा का वातावरण सदियों से साधारण जन-मानस पर हावी हो वहाँ Rational Thinking शीघ्र नहीं पनपता, लेकिन इससे प्रार्थना समाज द्वारा अछूत जातियों के लिए किये कार्य का महत्व कम नहीं हो जाता। इतना तो असंदिग्धतया कहा जा सकता है कि हम सामाजिक सुधारों के आंदोलनो ने धीरे-धीरे और अचूक रूपसे नीची जातियों के लोगों को प्रभावित करना शुरू किया था ब्रह्मसमाज तथा प्रार्थना समाज के कारण ही समग्र देश में सामाजिक सुधारों का वातावरण निर्मित हुआ और सामाजिक दृष्टि से पिछड़ी हुई कई जातियाँ भी इस मुख्यधारा में समारोहपूर्वक जुड़ी। इनमें केरल के ईसवों और उनके मुक्तिदाता श्री नारायण गुरू का वृतान्त यहाँ उल्लेखनीय समझा जायेगा। केरल और मलाबार के ईसव अछूत समझे जाते थे और वे आर्थिक तथा सामाजिक उत्पीड़न के शिकार थे। प्रार्थना समाज से प्रेरित होकर श्री नारायण गुरू ने आंदोलन चलाया। नारायण गुरू ने अपने कार्य का आरंभ ऐसे नये मंदिरो की स्थापना से किया, जिनमें बिना किसी भेदभाव के सभी जातियों के लोगों को प्रवेश मिलता था। यह एक प्रकार से उच्च जातियों के लोगों को प्रवेश मिलता था। यह एक प्रकार से उच्च जातियों के प्रति विद्रोह था क्योंकि उन दिनों केवल ब्राह्मण ही मंदिरो की स्थापना कर सकते थे। ब्राह्मणों के इन मंदिरो में अस्पृश्य अनुपगम्य नीच जातिवाले लोगों को

प्रवेश की अनुमति नहीं थी। अतः इन नये मंदिरों का इन नीची जातिवाले हिन्दुओं ने भी हृदय से स्वागत किया। बाद में तो श्री नारायण गुरू ने ऐसे मंदिरों की भी स्थापना का प्रयत्न भी किया जिनमें कोई देवमूर्ति नहीं होती थी। श्री नारायण गुरू का आदर्श वाक्य था- [४४] सभी मनुष्यों के लिए एक जाति, एक धर्म और एक ईश्वर हो। इस प्रकार श्री नारायण गुरू का यह आंदोलन, ब्राह्मणवादी-सामंतवादी गठबंधनी व्यवस्था पर एक प्रभावशाली आक्रमण था।

नारायण गुरू के आंदोलन का मूल्यांकन करते हुए डॉ. दामोदरन इस निष्कर्ष पर पहुँचते है- "इस सुधारक ने सामंतवादी व्यवस्था पर जो आक्रमण किया, वह अत्यंत प्रभावशाली था। श्री नारायण गुरूने जाति-प्रथा का विरोध किया और आधुनिक शिक्षा तथा संस्कृति को प्रोत्साहित किया। उन्होंने औद्योगिक क्रिया-कलापों को भी बहुत महत्व दिया। केरल में पहली औद्योगिक प्रदर्शनी उनके तत्वाधान में ही आयोजित की गई थी। उनकी इन कारवाईयों ने स्वभावतः ही उन ब्राह्मण और नायर जमींदारों के क्रोध को उभार दिया जो उस समय केरल के समाज में ऊँचे पदसोपानों पर अवस्थित थे। तो भी श्री नारायण गुरू अडिग भाव से अपने पथ पर बढ़ते गये। उन्होंने अपना सारा जीवन और शक्ति, मध्ययुगीन अंधविश्वासो जाति-प्रथा के आतंक और दलितों के सामंती अवशोषण के विरूद्ध संघर्ष को अर्पित कर दिया।" [४५]

नारायण गुरूके प्रयत्नो के फलस्वरूप ही केरल प्रदेश में ईझवा जाति के लोग अस्पृश्य नहीं माने जाते और जातिगत हीनता के कारण उन्हें सामाजिक व आर्थिक अपमान या शोषण का शिकार नहीं होना पडता।

दलित चेतना को जगाने के संदर्भ में प्रार्थना समाज के नेताओं में ज्योतिराव फूलो का नाम अग्रिम पंक्ति में रखा जाता है। ज्योतिराव फूले जाति के माली थे और उन्होंने सन् १८७३ सत्य शोधक समाज की स्थापना की थी। इस संस्था का उदेश्य मानव मात्र की महता का प्रतिप्रादन करना था फूले एक प्रकार से मद्रास में जो अब्राह्मणी आंदोलन चल रहा था उसके उदेश्यों, लक्ष्यों और अपेक्षाओं को पूर्ण करते थे उन्होंने अब्राह्मण

जातिओं के लोगों से आग्रह किया कि वे अपने कर्मकांडो मे ब्राह्मणों को न बुलावे। ब्राह्मणेतर जातिओं मे शिक्षा की आवश्यकता को पहचानते हुए उन्होंने सन् १८४८ में अब्राह्मण लड़के लड़कियों के लिए एक पाठशाला खोली थी। तत्पश्चात सन् १८५१ में ज्योतिराव फूले जी ने केवल अछूतों के लिए ही एक शाला खोली इसके अतिरिक्त फूले जी ने सरकार से यह माँग की कि सभी सरकारी सेवाओं तथा स्थानीक संस्थाओं में सभी जाति के लोगों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व होना चाहिए।

मार्क्सवादी नेता बी.टी. रणदीवे ने ज्योतिराव फूले के व्यक्तित्व का मूल्यांकन करते हुए लिखा था - "अछूतों के प्रति न्याय के पक्षधर थे। किसी भी जाति के लिए उनके मन में तनिक भी पक्षपात न था। वह मुस्लिमों और ईसाइयों के साथ भी बराबरी का बरताव चाहते थे। हैरानी की बात नहीं कि उनके आंदोलन का मूल नाम केवल सत्यशोधक आंदोलन था -यह आंदोलन मिथ्यात्व, अन्याय, हिंदू समाज व्यवस्था के पाखंड- और ब्राह्मणो और उनकी विचारधारा के खिलाफ जेहाद छेड़ दिया।" [४६]

प्रार्थनासमाज में जातिप्रथा के खिलाफ जो वातावरण दृष्टिगोचर होता है, उसका उत्स हमें उन आंदोलनो में मिलता है जो प्रार्थना समाज के गठन के पूर्व विद्यमान थे और जिन्होंने प्रार्थना समाज के लिए उचित पृष्ठभूमि का निर्माण किया। सर नारायण चंदा बताते है कि सन् १८४० में ही सुशिक्षित हिन्दूओं की एक गुप्त संसद बना ली गई थी जिसका उदेश्य जातिप्रथा का उनमूलन तथा सामाजिक निषेधों का अस्वीकार था डॉ. डी.एस. शर्मा "परमहंस सभा"नामक एक संस्था का उल्लेख करते है जिसका लक्ष्य जातिप्रथा के मूल में कुठाराघात कर रहा था। यह भी एक गुप्त संस्था थी और उसकी बैठको में सदस्यगण नीची जातिओं लोगों द्वारा बनाया हुआ भोजन ग्रहण करते है निषिध खानपान का सेवन करते थे। [४७]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि दलित चेतना को जगाने और स्थापित करने में प्रार्थना समाज तथा उसके महामहीम नेताओं की महती और निश्चित भूमिका रही है।

आर्यसमाज तथा अछूत समस्या : ---

सन् १८७५ में स्वामीदयानंद सरस्वती ने आर्यसमाज की स्थापना की हिन्दूपुनुत्थानवाद की पूरी आक्रमकता आर्य समाज में मिलती है आर्यसमाज की आक्रामकता के तीन मुख्य निशान थे - मुस्लिम, ईसाई और अनार्य धर्म संस्कृति और साहित्य इनके आक्रमण से बचने के लिए आर्यसमाज ने वेदों की ओर लौटने का नारा दिया था। आर्यसमाज हिन्दूधर्म में व्याप्त बाह्याचार और आडंबर की कटुआलोचना करता था। उनका अभिमत था कि इस आर्यतत्व हिन्दूधर्म में बाद में घुस आये थे और मूल वैदिक धर्म में ये बुराईयाँ नहीं थी दयानंद सरस्वती पर्वतीय पौराणीक धर्मों की कटु आलोचना करते थे इसी क्रम में उन्होंने बहुदैववाद और मूर्तिपूजा का भी खंडन किया था वे एकेश्वरवाद में विश्वास करते थे। उन्होंने जातिबंधन, बालविवाह, समुद्रयात्रा निषेध जैसे रीतिरिवाजो की भयंकर निंदा की नारी शिक्षा तथा विधवा विवाह को वे प्रोत्साहित करते थे। मुस्लिम ईसाई ओर अनार्य संस्कृतिक आक्रमणों से बचने के लिए स्वामीजी ने हिन्दूधर्म में जातिप्रथा को लेकर जो भेदभाव था उसे दूर करने की भरसक कोशिष की और उसी उपक्रम में आर्यसमाज ने ऐसे बहुत से कार्य किये जिसके कारण अछूत जाति को लाभ हुआ। पंडित जवाहरलाल नेहरू आमतौर पर पुनरूत्थानवादी आंदोलनो के कटु आलोचक थे तथापि उन्होंने आर्य समाज को इस काम के लिए शाबाशी देने में किसी प्रकार की कोताही नहीं बर्ती। यथा- ''इसने(आर्यसमाज ने) लड़को और लड़कियों में शिक्षा प्रसार, स्रियोंकी दशा सुधारने और दलितवर्गों का पद और स्तर ऊँचा उठाने की दिशामें बहुत उपयोगी काम किया।'' [४८] आर्यसमाज ने दलितवर्गों के लिए जो कार्य किये उसके बारे में डॉ. एस.नटराजन लिखते है- ''दूसरे महान हिन्दू धार्मिक सुधार- आंदोलन आर्यसमाज ने, अछूतों के हालात सुधारने के लिए सक्रिय कदम उठाये उसने शुद्धि आंदोलन का प्रवर्तन किया जिसका उदेश्य इन वर्गों को हिन्दू सामाजिकशरणी में ऊपर उठाना था उसने स्कूल शुरू किये जिनमें दलितवर्ग के किशोर-किशोरियाँ

संस्कृत पढ़ते थे, उन वेदों का अध्ययन करते थे जिन्हें रूढिवादी हिन्दु द्विजों के अलावा किसी को नहीं पढ़ने देते थे।" [४९]

आर्यसमाज के एक और उल्लेखनीय नेता स्वामी श्रद्धानंद को नटराज अछूतों के लिए पैगंबर ही समझते है और मानते है कि अपनी प्रभावशाली वक्तृताओं के जरिए उन्होंने इन वर्गों की दुरवस्था के प्रति हिंदुओं में चेतना जगाने का भगीरथ प्रयत्न किया। [५०] अपनी प्रख्यात पुस्तक "आर्यसमाज" में लाला लजपत राय लिखते है कि आर्यसमाज ने भारत के दलितवर्गों को विशेषतया दो रूपों में लाभ पहुँचाया है : (१) यज्ञोपवीत पहनने की अनधिकारी जातियों का स्तर ऊँचा करके उन्हें यज्ञोपवीत धारणा करने योग्य बनाना; और (२) अस्पृश्यों को स्पृश्य बनाना, उन्हें उच्चतर सामाजिक आदर्शों की शिक्षा देना ताकि अंततः वे अन्य हिंदुओं की तुलना में सामाजिक बराबरी का दरजा पा सकें। [५१]

आर्यसमाज ने दलित वर्गों के लिए बहुत अधिक काम किया-यह बात इतने विभिन्न दृष्टिकोण रखनेवाले विद्वानों द्वारा इतनी बार दुहरायी गई है कि सामान्यतः कोई अध्येता इसे चुनौती देने का साहस, या आवश्यकता, अनुभव नहीं करता। लेकिन, अछूत समस्या का कोई विद्यार्थी अछूत समस्या के बारे में आर्यसमाज की नीतियों को विशलेषित करने और, उनके बारे में अपनी स्वतंत्रराय कायम करने, से बच नहीं सकता। कारण यह कि यद्यपि अछूत प्रथा कि विरूद्ध भारतीय जनता का अभियान आर्यसमाज की स्थापना से पहले ही चल रहा था लेकिन आर्यसमाज ने इस दिशा में पहल करके न सिर्फ एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी बल्कि आगे आनेवाले समय के लिए अछूत प्रथा के विरूद्ध भारत के पूंजीवादी संघर्ष की अंतर्वस्तु ही निर्धारित कर दी। तब से लेकर आज तक जातिप्रथा और अछूत प्रथा के बारे में भारतीय पूंजीपति वर्ग का जो दृष्टिकोण और क्रियात्मक रूप रहा है वह मोटे तौर पर आर्यसमाज द्वारा दिये गये विचारधारात्मक ढांचे के अंदर ही घूमता-फिरता रहा है।

अपने अध्ययन के क्रम में हमने देखा कि ब्राह्म-समाज से लेकर श्री नारायण गुरू तक, समाज सुधारकों के मन में यह बात धीरे-धीरे स्पष्ट

होती जा रही थी कि अछूतों की समस्या मुख्य रूप से गरीबी और रोजगार के अवसरों की कमी की समस्या है। ब्राह्मसमाज के परवर्ती नेताओं और विशेष रूप से प्रार्थना समाज के नेताओं ने अछूत जातियों के किशोर-किशोरियों के लिए स्कूल खोले ताकि उन स्कूलों में पाश्चात्य शिक्षा ग्रहण करके, और आधुनिक रीति-नीति सीखकर वे अपने को रोजगार के सुअवसरों के योग्य बना सकें। इसके विपरीत, स्वामी दयानंद ने अछूतों को जनेऊ पहनाकर वेदो के अध्ययन का अधिकारी बनाने, और वेदाध्ययन की व्यवस्था करने, पर बल दिया। उन्होंने शुद्धि की व्यवस्था की और अछूत तथा ऊँच जाति के जो हिन्दू विभिन्न कारणों से मुस्लिम या ईसाई बन गये थे उन्हें फिर से हिंदू बनाने की प्रक्रिया का बीज डाला, जिसने आगे चलकर सांप्रदायिक तनाव की स्थिति को और भी गंभीर बनाया तथा अंग्रेजों को इसका फायदा उड़ाने का मौका दिया।

हिन्दू राष्ट्रीयता के जोश में स्वामी दयानंद सरस्वती इस तथ्य को नहीं समझ पायें कि ऐसे कौन से कारण है कि पिछड़ी जाति के लोग स्वधर्म को छोड़ कर विधर्मी हो रहे है। उन्होंने इस समस्या का केवल एक ही पहलू देखा कि इस्लाम और क्रिश्चन दोनों ही धर्मपरिवर्तनकारी हैं, जबकि हिन्दू धर्म में इसका कोई प्रावधान नहीं है स्वामीजी ने यह भी देखा कि मुस्लिमों को एकसूत्र में बाँधनेवाली "कुरान" और खिश्चनों को एकसूत्र में बाँधनेवाली "बाईबल" की तरह हिन्दूओं के पास उनका कोई मानक सर्वमान्य ग्रंथ नहीं है। गीता, भागवत, रामायण, महाभारत जैसे ग्रंथों को लोग हिन्दू धर्म के ग्रंथ बताते रहे है परंतु हिन्दूओं का धर्मग्रंथ ? कौन सा ? यह प्रश्न स्वामी जी के समय तक अनुत्तरित ही था। हिन्दूधर्म ग्रंथों के अध्ययन के उपरांत स्वामीजी ने देखा कि हिन्दूधर्म की इस कमी को "वेद" पूरी कर सकते है। उन्होंने यह भी देखा कि इस्लाम और ईसाई दोनों एकैश्वरवाद के समर्थक है, दूसरी ओर हिन्दूओं को उनके करोड़ों देवताओं ने परस्पर बुरी तरह से बॉट रखा है अतः उन्होंने भी एकैश्वरवाद का नारा बुलंद किया। स्वामीजीने यह भी देखा कि उक्त दोनों धर्मों की उपासना विधि सीधीसादी है जबकि हिन्दूओं का कर्मकांड बड़ा जटिल है और एकजाति विशेष ने उसको अपनी बपौती

बना लिया है । अतः उन्होंने इसको सरल किया और घर घर अग्निहोत्र जलने लगे और बिना पुरोहित की मदद के बिना वेद मंत्र के हवनकुंड मे आहुतियाँ देने लगे ।

परंतु अछूत समस्याका जो पहलू स्वामीजी नहीं देख सके, उसे नजर अंदाज नहीं किया जा सकता और उसको गहराई से समझने की आवश्यकता है । डॉ. कांतिमोहन ने इस संदर्भ में अपना अध्ययन प्रसूत मत अभिव्यक्त किया है-''देखने की बात यह थी कि हिन्दूधर्म से निकल जाने के लिए अछूतों के सामाजिक उत्पीड़न से कहीं बडा कारण इन जातियों का आर्थिक शोषण था। अंग्रेजों द्वारा भारतीय नगरों के उद्योग धंधो की तबाही के बाद भारतीय मजदूर और कारीगर गाँव में शरण लेने के बाध्य हुए थे और जमीन पर दबाव बढ़ाने के साथ-साथ वे खेत मजदूरों के रूप में अछूतों जैसा अभिशप्त जीवन बिता रहे थे । ... इन सारी बातों के साथ जब हम अछूतों के सामाजिक उत्पीड़न और सदियों से उनके प्रति सवर्णों को घोर उपेक्षा को जोड़ लेते है तब उस जमाने की एक काफी हद तक सही और पूरी तस्वीर हमारे सामने उभरती है । ऐसी थी वे जीवन परिस्थितियाँ, जिनके बीच हजारों-लाखों की संख्या में अछूत हिन्दू धर्मो को छोड़ कर अधिकतर ईसाई धर्म, और कभी-कभी इस्लाम की शरण मे जा रहे थे ।''[५२]

उस समय अछूत जाति के लोग ईसाई हो रहे थे उसके आंकडे लंडन टाईम्स तथा इंडियन रीव्यु में उपलब्ध होते है लंडन के टाईम्स अखबार में प्रकाशित हुआ था-''मद्रास के बिशप का दावा है कि पिछले ४० वर्षों में, केवल तेलुगु प्रांत में, लगभग २,५०,००० पंचम् (दक्षिण भारत की एक अछूत जाति) ईसाई बन गये है । त्रावणकोर में ७ लाख (अछूत) ईसाई बने ।''[५३]

अतः स्वामीजीने धर्मपरिवर्तन की इस प्रक्रिया पर रोकथाम लगाने हेतु अछूतों को लेकर कुछ उदार मतवादी विचार प्रस्तुत किये स्वामीजी के चिंतन की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार है : (१) अछूतों की मुख्य समस्या

सामाजिक उत्पीड़न और असमानता है । (२) वेद और यज्ञोपवीत इन्हें सवर्णों की बराबरी दिला सकते है । (३) वैदिक धर्म संसार का सर्वश्रेष्ठधर्म है (इसलिए इसे छोड़कर अछूतों को किसी और धर्म की शरण में जाने की सोचना ही नहीं चाहिए , बल्कि जो अछूत चले भी गये है उन्हें शुद्धि कराके वापस आ जाना चाहिए।) (४) छूत-छात का विचार वेद संमत नहीं है, लेकिन वर्णाश्रम धर्म मे कोई बुराई नहीं है, अतः इसे बना रहने दिया जाय । (५) अछूतों को लेकर इस्लाम और ईसाई मतके प्रति हिन्दूओं को आक्रमक रूख अत्यार करना चाहिए और हिन्दूओं को विधर्मी होने से रोकना चाहिए। [५४]

इंडियन सोशल कानफ्रेंस और अछूत समस्या : ---

सन् १८८५ में कोंग्रेस की स्थापना हुई थी उस समय कोंग्रेस ने अपनी गतिविधियों को केवल राजनीतिक कार्यों तक ही महदूद रखा था अतः समाज सुधार के आंदोलनो के लिए कोंग्रेस से ही एक अन्य शाखा का उद्भव हुआ जिसे ''इंडियन सोशल कोनफ्रेंस'' नाम दिया गया। उस समय देश के कोने -कोने में समाज सुधार के तरह-तरह के आंदोलन चल रहे थे जिनका निर्देश पूर्ववर्ती पृष्ठों मे दिया गया है । कई आंदोलन तो स्वतः स्फूर्त थे । कई आंदोलन ब्रह्मोसमाज, प्रार्थनासमाज, आर्यसमाज आदि से प्रेरित थे इंडियन नेशनल कोंग्रेस की स्थापना एक भारतीय पूंजीपति की प्रेरणा से हुई थी । दो वर्ष बाद उसकी ही प्रेरणा से इंडियन सोशल कोनफ्रेंस की स्थापना सन् १८८७ में हुई यह संस्था समाज सुधार के कार्यों के लेकर अग्रसरित हुई थी अतः अछूत समस्या भी उनका एक अहम् मुद्दा था। बाद में सन् १९२० के उपरांत गांधीजी ने जब कॉंग्रेस की बागडोर को संभाला तो उन्होंने कोंग्रेस को केवल राजनीतिक मसलों तक सीमित न रखकर उसे बहुमुखी और बहुआयामी बनाया । महात्मा गांधी केवल राजनीतिक स्वतंत्रता के पक्ष में नहीं थे, वे भारत वर्ष को हरदृष्टि से,

आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि सभी दृष्टि से स्वतंत्र करना चाहते थे अतः समूचे राष्ट्र को जगाने का जो महायज्ञ उन्होंने आरंभ किया उसमें अस्पृश्यता निवारण का मुद्दा सबसे उपर था। सन् १८८७ से १९२० तक अछूत समस्या को दूर करने का कार्य उक्त निर्दिष्ट कॉनफ्रेंस ने किया।

विवेकानंद और अछूत समस्या : ---

स्वामी विवेकानंद ने अपना समग्रजीवन हिन्दूधर्म को पुनरूज्जीवित करने में खर्च कर दिया। परंतु वे हिन्दूधर्म को इस रूप में पुर्नजीवित नहीं करना चाहते थे जिस रूप में वह था वे धर्म की स्थापना तर्क और युक्ति के आधार ये करना चाहते थे धर्म की उनकी विभावना अंत्यंत व्यापक और व्यवहारिक थी वे पाश्चात्य वैज्ञानिक भौतिक प्रगति और भारत की आत्मिक पृष्ठभूमि का सामंजस्य करना चाहते थे। इस संदर्भ में डॉ.रामधारीसिंह दिनकर ने स्वामीजी के विचारों को अभिव्यक्ति देते हुए लिखा है -"प्रश्चिम से हम यंत्रवाद की शिक्षा ले सकते है। और भी कई बातें अच्छी है, जिन्हें प्रश्चिम से ग्रहण करना आवश्यक दिखता है। किन्तु हमें उन्हें कुछ सिखाना भी है हम उन्हें धर्म और आध्यात्मिकता की शिक्षा दे सकते हैं। विश्व सभ्यता अभी अधूरी है। पूर्ण होने के लिए वह भारत की राह देख रही है। वह भारत की उस आध्यात्मिक सम्पति की प्रतीक्षा में है, जो पतन गंदगी और भ्रष्टाचार के होते हुए भी भारत के हृदय में जीवित और अक्षुष्ण है। इसलिए , संकीर्णता को छोड़कर हमें बाहर निकलना है। पश्चिमवालों से हमें एक विनिमय करना है। धर्म और आध्यात्मिकता के स्तर की चीज़े हम उन्हें देंगे और बदले में, भौतिक साधनों का दान हम सहर्ष स्वीकार करेंगे। समानता के बिना मैत्री संभव नहीं होती और समानता वहाँ आयेंगी कहाँ से, जहाँ एक तो बराबर गुरू बना रहना चाहता है, और दूसरा उसका सनातन शिष्य ?" [५५]

अतः कहा जा सकता है कि धर्म, संस्कृति सभ्यता विषयक स्वामीजी

का दृष्टिकोण बहुत ही संयत और तर्क और युक्ति पर आधारित था। वे जातिप्रथा के प्रखर विरोधी थे वे मानते थे कि भारत की आशा अब केवल उसकी सामान्य जनता पर निर्भर है, तथा कथित उच्चवर्ग शारीरिक और नैतिक रूप से मुर्दा हो चुका है धर्मों और ऊँची जातिओं का मजाक उड़ाते वे कहा करते थे- ''हमारा धर्म रसोई में घुसा हुआ है। यतिली हमारा ईश्वर है और हमारा धर्म है: मुझे हाथ न लगाना, मैं पवित्र हूँ।'' [५६]

डॉ. के.दामोदरन स्वामीजी के संदर्भ में लिखते है - ''उन्होंने अस्पृश्यता, जातिश्रेष्ठता की भावना पंडे-पुरोहितों और धार्मिक आतंक की कटु निंदा की। उन्होंने घोषणा की : मैं आम लोगों को अंधविश्वासी मूर्खों के वजाय पक्के अनीश्वरवादियों के रूप में देखना ज्यादा पसंद करूँगा अनीश्वरवादी जीवित तो होते है, वह किसी काम तो आ सकता है किन्तु जब अंधविश्वास जकड़ लेता है तब तो मस्तिष्क ही मृतपाय हो जाता है, बुद्धिजम जाती है और मनुष्य पतन के दलदल में अधिकाधिक गहरे डूबता चला जाता है।'' [५७]

विवेकानंद गरीबो, अछूतो और मजदूरों के सच्चे हमदर्द थे एक यंत्र में उन्होंने लिखा था - ''गरीबों के लिए काम की व्यवस्था करने के लिए भौतिक सभ्यता की, यहाँ तक की विलास-बाहुल्य की आवश्यकता होती है, रोटी, रोटी। मैं यह नहीं स्वीकार करता कि जो ईश्वर मुझे यहाँ रोटी नहीं दे सकता, वह स्वर्ग में मुझे अनंत सुख देगा। उफ ! भारत को उपर उठाया जाना है गरीबो की भूख मिटायी जाना है। शिक्षा का प्रसार किया जाता है हमें पंडे-पुरोहित नहीं चाहिए। हमें सामाजिक आतंक नहीं चाहिए हरएक के लिए रोटी, हरएक के लिए काम की अधिक सुविधाएँ चाहिए।'' [५८]

स्वामी विवेकानंद जब रूस से लौटते है तो एक पत्र में लिखते है- ''मानव समाज पर बारी-बारी से चार जातियों का राज्य होता है- पुरोहितों, सैनिकों, व्यापारियों और मजदूरों का। सबसे आखिर में मजदूरों का

राज्य (शुद्रो) का राज्य आयेगा....पहली तीन जातियों के शासन के दिन अब लद चुके है । अब इस आखिरी वर्ग का समय आया है उसे शासन मिलना ही चाहिए कोई इस बात को रोकही नहीं सकता ।'' [५९] जिसे हम ब्राह्मण क्षत्रिय पुरोहित और शुद्र कहते है; स्वामीजी उसे पुरोहित सैनिक व्यापारी और मजदूर की संज्ञा देते है । इसप्रकार हम देख सकते है कि स्वामी विवेकानंद की धर्मभावना व्यापक और मानवतावादी है और अपने लेखो तथा व्याख्यानो में उन्होंने सदैव अछूतों का पक्ष लिया है ।

अछूत समस्या में विभिन्न महानुभावों का योगदान : ---

उपर्युक्त विवेचन में अछूतोद्धार को लेकर ब्रह्मोसमाज, प्रार्थनासमाज, आर्यसमाज आदि धार्मिक-सामाजिक संस्थाओं ने जो भूमिका अदा की उसे रेखांकित किया गया है । यहाँ संक्षेप में उन महानुभावों का उल्लेख करने का हमारा उपक्रम है जिन्होंने स्वतंत्रता पूर्व काल में अछूतों की समस्याओं को लेकर न केवल गहरा चिंतन किया है, अपितु उस दिशा में सक्रियता से आगे बढ़ते हुए अछूतोद्धार कार्य भी किये है । ऐसे महानुभावों में गोपालराव हरिदेश मुख ''लोक हितवादी'' (सन्- १८२३-१८९२), महात्मा ज्योतिबा फूले (सन्- १८२७-१८९०), गोपालगणेश आगरकर (सन्- १८५६-१८९५), लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक (सन्- १८५६-१९२०), महर्षि प्रोफेसर अन्ना साहब कर्वे (सन्- १८५८-१९६२), श्रीमंत महाराज सयाजी राव गायकवाड (सन्- १८६३-१९३९), गोपाल कृष्ण गोखले (सन्- १८६६-१९१५), महात्मा गांधी (सन्- १८६९-१९४८), महर्षि विठ्ठलरामजी शिंदे (सन्- १८७३-१९४४), स्वातंत्र्यवीर सावरकर (सन्- १८८३-१९६६), राजर्षि श्री साहूमहाराज (सन्- १८८४-१९२२), डॉ.बाबासाहब आबेंम्डकर (सन्- १८९१-१९५६), कर्मवीर भाउ राव पाटील (सन्- १८८७-१९५९) आदि नामोल्लेख करना अनिवार्य हो जाता है क्योंकि इन महानुभावों ने दलित वर्ग की जो सेवा की है वह अत्यंत ही

स्पृहनीय एवं स्लाघनीय है। [६०]

इन महानुभावों में से कुछ एक की चर्चा तो प्रकारान्तर से हो गई है तथापि श्रीमंत महाराजा सयाजी राव गायकवाड, महात्मा गांधी, राजर्षि श्री साहूमहाराज तथा डॉ.बाबासाहब आम्बेडकर ने इस दिशा में जो कार्य किये है उन पर एक विहंगम दृष्टिपात करना आवश्यक हो जाता है। बडौदा के महाराजा सयाजी राव गायकवाड एक आर्श दृष्टा राजवी थे उन्होंने स्वतंत्रता पूर्व जो सुधारवादी कार्यक्रम चलाये उसमें दलितों के उद्धार को सर्वाधिक प्राथमिकता दी थी सन् १९०९, २६ सितम्बर को पूना में ''डिप्रेस्ड क्लास मिशन सोसायटी'' नामक संस्था के कार्यक्रम में महाराजा सयाजीराव गायकवाड अध्यक्ष थे और अध्यक्ष के नाते उन्होंने दलितों को खूब बल प्राप्त हुआ। यह सब कार्य उन्होंने सनातनी हिन्दूओं का विरोध सहन करते हुए भी किया बहुत-से सवर्ण शिक्षक दलित बच्चों को पढ़ाने तैयार नहीं थे अतः दलितों की पाठशालाओं के लिए उन्हें क्रिश्चन और मुस्लमान शिक्षकों की मदद बाहर से मँगवानी पड़ी थी। यह भूलना नहीं चाहिए कि दलितों के मसीहा कहे जानेवाले डॉ.बाबासाहब आम्बेडकर के व्यक्तित्व निर्माण में श्रीमंत महाराजा गायकवाड का योगदान नगण्य नहीं है।

महात्मा गांधी की स्वतंत्रता-विषयक विभावना तत्कालीन अन्य कोंग्रेसी नेताओं जैसी नहीं थी। केवल राजनीतिक आज़ादी गांधीजी को कभी मान्य नहीं थी। वे समूचे राष्ट्र को उपर उठाना चाहते थे अतः उनकी विभिन्न राष्ट्रीय मुद्दो में अछूतोद्वार का मुद्दा अहं था। आज बहुत से दलित नेता गांधीजी को दलित-विरोधी बताते है परंतु महात्मा गांधी ने इस संदर्भ में जो कार्य किया है उसे नजर अंदाज नहीं कर सकते। दलितों की कमजोरी को समझते हुए उन्होंने उनको सवर्ण हिन्दूओं के संघर्ष से दूर रखना उचित समझा था उन्होंने दलितों को उकसाने का कार्य भी नहीं किया। इस संदर्भ में वे मध्यमार्गी थे और शांति और करूणा से हृदय परिवर्तन के द्वारा अस्पृश्यता निवारण का कार्य वे करना चाहते थे

अछूतोंद्धार के लिए उन्होंने ''हरिजन सेवक संघ''की स्थापना की थी और देश-विदेश में दलितों के उद्धार की भावना जगाने हेतु उन्होंने हरिजन नामक एक अंग्रेजी साप्ताहिक सन् १९३३ में शुरू किया था। इसके परिणाम स्वरूप हजारों मंदिर विद्यालय उपहार गृह पनघट आदि हरिजनो के लिए खुल गये थे । इस संदर्भ में डॉ.बलवंतसाधु जाधव ने लिखा है- ''डॉ.बाबासाहब आम्बेडकर ने जिस प्रकार अत्याचारी, सनातनी हिन्दुओं पर उग्र स्वरूप का विद्रोह शस्त्र, चलाया, उस प्रकार महात्मा गांधी ने कभी नही किया। .... महात्मा गांधी की नीति समाज कल्याण की दृष्टि से सामन्जस्यवादी थी, इसलिए उन्होंने दलित सेवामें खास दलितों का पक्ष नहीं लिया होगा। फिर भी उन्होंने अस्पृश्यतो को हटाने के लिए जो तयश्चर्या की, उसका मोल शब्दों के परे है।'' [६१]

अछूतोंद्धार के संदर्भ में कोल्हापुर के महाराजा राजर्षि श्री साहू महाराज का योगदान भी नगण्य नहीं कहा जा सकता। बड़ौदा के महाराजा सयाजीराव के भाँति साहु महाराज ने भी अपने राज्य में दलितोद्धार के कई कार्य किये। उन्होंने भी डॉ. बाबासाहब आम्बेडकर की शैक्षिक गतिविधियों में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया था। साहु महाराज अस्पृश्यता (Untouchability) को दासता (Slavery) से भी ज्यादा भयानक एवं अमानुषी मानते थे उन्होंने अपने राज्य में दलित उम्मीदवारो को प्राधान्य देते हुए उन्हें क्लर्क की नौकरी में नियुक्त किया, इतना ही नहीं उनको कोल्हापुर नगर परिषद में प्रतिनिधित्व देने की उदारता भी दिखाई। उन्होंने पानी भरने के नल, तालाब, कुँए, धर्मशालाएँ, अस्पताल, पाठशालाएँ तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों पर से अस्पृश्यता को हटाया। गरीबों और दलितों के लिए उन्होंने सार्वजनिक भोजनालय शुरू किये। दलितों की पृथक पाठशालाओं को बंध करवाकर दलित छात्रों को सार्वजनिक पाठशालाओं में प्रवेश दिलवाया, इतना ही नहीं उन्होंने अनेक शिक्षित दलितों को वकील के रूप में भी नियुक्त किया। [६२] इस प्रकार साहुमहाराज ने दलितों के उद्धार के लिए जो कार्य किये वे भारत के

इतिहास में सुवर्ण अक्षरों से अंकित होंगे ।

दलितों के उद्धार का प्रश्न हो और उनके मसीहा डॉ.बाबासाहब आम्बेडकर का नामोल्लेख न हो यह हो ही नहीं सकता है । स्वाधीनता संग्राम के दौरान नवजागरण की प्रवृत्तिओं से प्रेरित होकर अनेक सवर्ण नेताओं ने इस दिशा में अपनी अश्रुतपूर्व क्रियाशीलता बताई है, परंतु जो वेदना और व्यथा और इसीलिए प्रखरता किसी दलित नेता में हो सकती है उसका उनमें अभाव हो उसे स्वाभाविक ही कहा जायेगा क्योंकि उनके अनुभव परागत (Second-Hend) होते है, जबकि दलित व्यक्ति के अनुभव अपरागत (First-Hend) होते है । डॉ.बलवंत साधु जाधव ने डॉक्टर साहब के संदर्भ में लिखा है - "प्राचीन 'मनुस्मृति' को भस्मीभूत करके आचरण और समाज व्यवस्था की 'स्मृति' स्थापित करनेवाले समता और स्वातंत्र्य के प्रतिपादक तथा दलितों के भाग्य विधाता डॉ.बाबासाहब आम्बेडकर का जीवन-कार्य दलितों के खातीर समर्पणशील और त्यागी व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब है, जिसमें अनावश्यक अन्याय ढोंगी प्राचीन व्यवस्था के प्रति विद्रोह का स्वर उभरा हुआ है । उस महानविभूति के जन्म से न केवल दलितों को, बल्कि मानवता को मान, प्रतिष्ठा और चेतना का स्वरूप प्राप्त हुआ । .... अस्पृश्यता राष्ट्रीय प्रश्न है, उसे मानवीय मूल्य से तौलना चाहिए , अस्पृश्यता से भारतीय एकात्म जीवन खंडित हुआ है, जातिय-व्यवस्था के निर्मूलन के सिवा देश संपन्न और समृद्ध नहीं होगा, हिन्दू समाज का समता की नींव पर पुनर्गठन होने की आवश्यकता है, चातुर्यवर्ण की दीवारें गिराकर एकवर्णीय समाज में सच्चा राष्ट्र पलता है, इस प्रकार की भावव्यहलता और तड़प से कहनेवाला एक इन्सान अठारह सौ इक्यानबै में उत्पन्न हुआ। उसके जन्म से पद्दलितों का भाग्य उजागर हुआ।" [६३]

डॉक्टर साहब ने सन् १९२० में दलितों की व्यथा को वाणी देने के उदेश्य से "मूक नायक" नामक एक साप्ताहिक चलाया। इसके उपरांत सन् १९२४ २ जुलाई के दिन "बहिष्कृत हितकारिणी सभा" नामक संगठन

की स्थापना कर दलितोद्धार कार्य को एक संगठन का रूप दिया। आगेचलकर राजर्षि श्री साहुमहाराज से सहायता मिलने पर उन्होनं दलितों के कार्य को आगे बढ़ाया। डॉक्टर साहब ने संस्कृत का अध्ययन करके हिन्दूशास्त्रों का गहरा अध्ययन किया। इस अध्ययन से वह इन तथ्यों से अवगत हुए कि दलितों को एक षडयंत्र के तहत निम्न स्तर पर पहुँचाने का कार्य "मनुस्मृति" ने किया था अतः उसका सार्वजानिक रूप से दहन करने का साहस बाबासाहब ने दिखाया। प्रथम गोलमेज परिषद में वे भारतीय दलितों के प्रतिनिधि के रूप में गये द्वितिय गोलमेल परषिद में भी उनको आमंत्रित किया गया वहाँ उन्होंने दलितों की तरफ से उनको न्याय दिलाने की अनेक माँगे प्रस्तुत की। बाबासाहब के इस कार्य से महात्मा गांधी कुछ नाराज भी हुए परंतु बाबासाहब अपने मिशन के स्पष्ट थे। उन्हें वह आज़ादी मंजूर नहीं थी जिसमें दलितों के हितों की रक्षा न हो और उन्हें पुनः पददलित अवस्था में जीवन व्यतीत करना पड़े।

डॉ.बाबासाहब आम्बेडकर ने कालाराम मंदिर सत्याग्रह, महाड सत्याग्रह, मुखेड ग्राम का सत्याग्रह, रामकुंड प्रवेश सत्याग्रह, रामरथ-उत्सव विषयक सत्याग्रह आदि मांगो में रूढिचुस्त हिन्दू समाज को दलित जातियों की अवहेलित, बहिष्कृत जिंदगी का यथार्थ एवं नग्न रूप दिखाकर उनके लिए समान हको की माँग की मुहिम को अग्रसरित किया। इतना ही नहीं उन्होंने भारत के दलित समाज को जगाने का कार्य किया। उनको यह एहसास दिलाया कि संगठित षडयंत्रो द्वारा रचित अन्याय और जुल्म के वातवरण को संगठित, सुशिक्षित एवं जागृक होकर ही किया जा सकता है। जब तक अन्याय और अत्याचार के खिलाफ आक्रोश का भाव पैदा नहीं होगा तब तक दलितों पर जुल्म ढाते ही रहेंगे उन्होंने उच्चवर्गीय सनातनी हिन्दू मन को दलितों की अनंत यातनायें, दर्द भरी पशुवत हालत पर विचार करके भेद-भाव, ऊँच-नीच, जात-पात की भेद नीति का त्याग करने के लिए उनको कईबार ललकारा। पर व्यर्थ, उनके ये प्रयत्नो पत्थर पर पानी के मानींद नाकारा और नायाब रहे। अतः उन्होंने निश्चय किया

कि जो धर्म न्याय नहीं देता उसे त्याग देना चाहिए। इस विचार-मंथन के परिणाम स्वरूप सन् १९३५ में उन्होंने अपने धर्मान्तरण की ऐतिहासिक घोषणा की - "मैं हिन्दू के रूप में जन्मा हूँ, पर हिन्दू के रूप में मरूँगा नहीं।" [६४] यह सर्वविदित तथ्य है कि अंततोगत्वा बाबासाहब ने बौद्ध धर्म को अंगीकृत किया था। स्वतंत्रता के बाद संविधान की रचना के लिए जो समिति बनी बाबासाहब उसके अध्यक्ष थे और उनके प्रयत्नों से ही संविधान में कुछ ऐसे प्रावधान रखे गये जिनसे अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों का कल्याण हो सकता है।

स्वतंत्र भारत में दलितों के उत्थान के लिए किए गये प्रयत्न : ---

स्वतंत्र भारत में दलितो की स्थिति में सुधार लाने हेतु जो प्रयत्न हुए हैं उनको हम निम्नलिखित शीर्षको में विभक्त कर सकते है : (१) संवैधानिक प्रावधान (२) शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएँ (३) संसद विधानमंडलो तथा स्थानिक स्वराज्य की संस्थाओं में दलित जातियों का प्रतिनिधित्व (४) कल्याण एवं सलाहकार संगठन के प्रयत्न (५) सरकारी नौकरियों में प्रतिनिधित्व (६) आर्थिक उन्नति हेतु किए गये प्रयत्न (७) अन्य कल्याण योजनाएँ।

(१) संवैधानिक प्रावधान : --

हमारे संविधान की रचना में डॉ.बाबासाहब आम्बेडकर की मुख्य भूमिका थी यह निर्दिष्ट किया जा चुका है। उनके तथा उस समय के अन्य कतिपय मानवतावादी नेताओं के प्रयत्नों के फलस्वरूप हमारे संविधान में कुछ ऐसे प्रावधान रखे गये जिनसे दलितजातियों का उत्थान एवं कल्याण हो सकता है। संविधान के अनुच्छेद १५(१) में कहा गया है कि धर्म,

मूल वंश, जाति लिंग, जन्मस्थान अथवा इन में से किसी एक के आधार पर राज्य के किसी नागरिक के साथ भेदभाव पूर्ण व्यवहार नहीं होगा तथा दुकानों, सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश करने और साधारण जनता के उपयोग के लिए बने कुंओ, तालाबो, स्नानघाटो, सड़को आदि के प्रयोग से किसी को नहीं रोका जायेगा संविधान क अनुच्छेद १७ के अनुसार अस्पृश्यता का अंत कर उसका किसी भी रूप में प्रचलन निषिध कर दिया जायेगा। अनुच्छेद १८ के अनुसार अस्पृश्यों पर थोपी गई व्यवसायिक निर्योग्यताओं को समाज कर दिया जायेगा। अनुच्छेद १४ में कहा गया है कि हिन्दूओं के सभी धार्मिक स्थान सभी जातियों के लिए खोल दिए जायेंगे। अनुच्छेद २९ के अनुसार राज्य द्वारा पूर्ण या आंशिक सहायता प्राप्त किसी भी शैक्षिक संस्थाओं धर्म जाति वंश या भाषा के आधार पर किसी भी भारतीय नागरिक को प्रवेश के लिए रोका नहीं जायेगा। संविधान के अनुच्छेद ४६ में ये कहा गया है कि अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों को शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान की जाए तथा उन के आर्थिक हितों की रक्षा करते हुए उनको सभी प्रकार के सामाजिक अन्याय और शोषण से बचाया जाय। संविधान के अनुच्छेद ३३५ में कहा गया है कि संघ या राज्य के कार्यो से संबंधित सेवाओं एवं पदों के लिए नियुक्तियाँ करने में अनुसूचित जातियों तथा आदिम जनजातियों के हितों का ध्यान रखा जाय अनुच्छेद १४६ एवं ३३८ के अनुसार अनुसूचित जातियों के कल्याण एवं हितो की रक्षा के लिए राज्य में सलाहकार परिषदों एवं पृथक पृथक विभागों की स्थापना की जाय/साथ यह भी कहा गया कि राष्ट्रपति अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम जनजातियों का एक विशेष पदाधिकारी नियुक्त करेगा। इन संविधानिक प्रावधानों के कारण दलित जातियों का कुछ उत्थान हुआ है, परंतु यह एक चिंता का विषय है कि दलित चेतना के इस नवशिशु का असमय गला घोंटने की षडयंत्रकारी मुहिम भी हमारे सांप्रतिक समय में अधिकाधिक उग्र रूप धारण कर रही है।

(२) शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएँ : ---

स्वाधीनता के बाद अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों को शिक्षा सम्बन्धी कुछ विशेष विधाएँ प्रदान की गई जिनसे वे अन्य लोगों की बराबरी करने की क्षमता प्राप्त कर सकें । फलतः उनके लिए शिक्षा संस्थाओं में निशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गई, इतना ही नहीं १९४४-४५ से अस्पृश्य जातियों के छात्रों को छात्रवृतियाँ देने की प्रवृत्ति जो प्रारंभ की थी से अधिक सघन बनाया गया। कई शिक्षा संस्थाओं में उन्हें भोजन एवं वस्त्र की सुविधा भी प्रदान की जाने लगी राज्य सरकार द्वारा अभिसंचालित समाजकल्याण विभागों के माध्यम से उनके लिए छात्रावासों को चलाने की व्यवस्था की गई इस वर्ग के प्रतिभाशाली छात्रोंको उच्च शिक्षा हेतु विदेश जाने के लिए छात्रवृत्ति का प्रावधान किया गया। मेडिकल, इंजनियरींग तथा अन्य विद्याशाखाओं में उनके प्रवेश के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई संघीय लोक सेवा आयोग द्वारा प्रायोजित स्पर्धात्मक परीक्षाओं में इन वर्गों के उम्मीदवार अधिकाधिक आवे इस हेतु से देश में अनेक स्थानों पर उनके लिए प्रशिक्षण खोले गये । छठ्ठी पंचवर्षीय योजना (१९८०-८५) में मेट्रिक पूर्वस्तरमें इस वर्ग के १०५ लाख छात्रों तथा मेट्रिक के बाद का शिक्षा के लिए ८ लाख छात्रों के लिए छात्रवृत्तियों का प्रबंध किया गया था। पाँचवी पंचवर्षीय योजनामें इनके लिए १९७.३५ करोड रुपयों का खर्च किया गया था। छठ्ठी पंचवर्षीय योजना में यह राशि बढ़कर ५०६.५० करोड़ की हो गई । ६५ इन सब सुविधाओं के कारण अनुसूचित जाति तथा जनजाति में शिक्षा का कुछ प्रचार-प्रसार हुआ है परंतु यहाँ इस तथ्य को नजर अंदाज नहीं करना चाहिए कि इन सब योजनाओं के सुफल इन वर्ग के लोगोंको अभी अभी मिलने लगे है समाज के अन्य वर्ग और वर्ण के लोगों की समता करने में इनको अभी काफी समय लग सकता है ।

(३) संसद, विधानमंडलो तथा स्थानिक स्वराज्य की संस्थाओं में पददलित जातियों का प्रतिनिधित्व : ---

उपर जिन संवैधानिक प्रावधानो की बात हुई है, उसके अंतगर्त यह व्यवस्था भी हुई थी कि अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए संसद, विधानमंडलों तथा स्थानिक स्वराज्य की संस्थाओं-ग्रामपंचायत, तालुका पंचायत, जिल्ला पंचायत, म्युनिसिपालिटी कोर्पोरेशन आदि- में आनुजातिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गई है। पहले ये स्थान संविधान लागू होने के २० वर्ष तक सुरक्षित रखे गये थे परन्तु बाद में हर पाँच वर्ष के बाद इस अवधि को बढ़ाया जाता है। कुछ लोगों के मन में इस बात को लेकर काफी रोष है कि आखिर कब तक यह राजनीतिक आरक्षण चालू रहेगा ? तो इसका सरल-सा उत्तर है कि जब तक समाज में पूर्णतया समरसता स्थापित नहीं हो जाती तब तक इन प्रावधानों को नहीं हटाना चाहिए। सन् १९४८ के आंकडो के अनुसार संसद के ५४२ स्थानों में से ७९ और राज्यों की विधान सभाओं के ३९९७ स्थानों मे से ५५७ स्थान अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए सुरक्षित रखे गये थे। [६६] स्थानिक स्वराज्यों के संस्थाओं में भी उनके लिए स्थान सुरक्षित रखे गये है। इन सब व्यवस्था के परिणाम स्वरूप इस वर्ग के लोगों में शनैः शनैः राजनीतिक चेतना उभर रही है और साथ ही साथ उनकी हिम्मत भी खुल रही है और जातिगत संकोच भी दूर हो रहा है।

(४) कल्याण एवं सलाहकार संगठन के प्रयत्न : --- (Efforts by welfare and Advisory organizations)

केन्द्र तथा राज्यों मे उक्त वर्ग के कल्याण हेतु अलग-अलग

विभागों की संरचना हुई है । कुछ राज्यों में तो उक्तवर्ग के लोगों के कल्याण को ध्यान में रखते हुए पृथक मंत्रालय भी स्थापित किये गए है । केन्द्र स्तर पर इन विभिन्न कल्याण कार्यक्रमों पर देख रेख रखेन का और उसका मूल्यॉकन करने का उत्तरदायित्व गृहमंत्रालय का है । भारत सरकार ने सन् १९६८, १९७१ तथा १९७३ में अनुसूचित जातियाँ तथा जनजातियों के लिए चल रहे कल्याण कार्यों की प्रगति के मूल्यॉंकन हेतु संसदीय समिति का गठन भी किया था कुछ प्रगतिशील राज्यों में राज्यस्तर पर भी इस प्रकार की समितियाँ गठित हुई थी इस समय अनेक गेरसरकारी संगठन भी अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के उत्कर्ष हेतु कार्यरत है । [६७]

(५) सरकारी नौकरियों में प्रतिनिधित्व : ---

अनुसुचित जाति तथा जनजाति और अन्य पिछड़े वर्ग के लोगों के उत्कर्ष के लिए सरकारी संस्थानों में तथा सरकार द्वारा अनुमोदित और अनुदान प्राप्त संस्थाओं में कुछ आरक्षित स्थान रखे गये है । स्पर्धात्मक परीक्षाओं द्वारा होनेवाली नियुक्तियों मे १५% प्रतिशत तथा अन्य प्रकार से कि जानेवाली नियुक्तियों में १६.२/३ % स्थान अनुसुचित जाति के लिए सुरक्षित रखे गये है । तीसरी और चौथी श्रेणीओं में जिनमें सामान्य रूप से स्थानीय और क्षेत्रीय लोगों को या उम्मीदवारो को लिया जाता है, वहाँ राज्यो तथा केन्द्रशासित क्षेत्रों की अनुसुचित तथा आदिम जाति के लोगों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण दिया जाता है । दूसरी, तीसरी तथा चौथी श्रेणीओं में विभागीय परीक्षाओं के आधार पर तीसरी और चौथी श्रेणीओं में चयन के आधार पर पदोन्नतियों में अनुसुचित जातियों तथा अनुसुचित जनजातियों के लोगों को क्रमशः १५ तथा ७.५% प्रतिशत स्थान सुरक्षित रखे जाते है । वरिष्ठता के आधार पर होनेवाली पदोन्नतियों में भी उक्त जातियों के लिए कुछ स्थान सुरक्षित रखने की व्यवस्था है । आरक्षण की इस नीति से स्वतंत्रता के इन ५० वर्षों में

निम्नजातियों का थोड़ा बहुत लाभ अवश्य हुआ है, परंतु ५० वर्षों में उक्त नीतियों से ये जातियाँ जितनी लाभान्वित होनी चाहिए , और मुख्यधारा में उनका जो विलीनीकरण होना चाहिए , उतना नहीं हुआ है । कारण स्पष्ट है पिछड़ी जातियों के कल्याण के इस मार्ग को राजनीतिक लोगों ने अपने स्वार्थ की रोटियों को शेकने का एक जरिया बना लिया। उसके पीछे जो प्रामाणिकता निष्ठा और नीयत होनी चाहिए , उसका सर्वथा अभाव था। तीसरे और चौथे वर्ग में जहाँ सामूहिक रूपों से नियुक्तियाँ होती थी वहाँ तो उसका थोड़ा-बहुत पालन हुआ भी, परंतु दूसरे और प्रथम वर्ग में आरक्षण के नियमों का पूर्णतया पालन नहीं हुआ। उन नियमों को न लागू करने के लिए चालाक प्रशासन ने कुछ छल-छिद्रो(loopholes) का अनवेषण बहुत ही चतुराई से कर लिया। आरक्षित स्थान पर जब किसी व्यक्ति को साक्षात्कार के लिए बुलाया जाता था, तब उसकी योग्यताओं की विधिवत् पडताल किये बिना उसके नाम के सामने "Not Sutable" लिख दिया जाता था और प्रथम प्रयत्न, द्वितिय प्रयत्न, तृतीय प्रयत्न, चर्तुथ प्रयत्न ऐसा करके अंततः उस स्थान को "जनरल" बना दिया जाता था। जब इसका विरोध हुआ और यह निश्चित किया गया कि आरक्षित स्थान पर उसी श्रेणी के व्यक्ति को लिया जायेगा, तब प्रशासन ने दूसरा रास्ता ढूंढ निकाला अनेक-अनेक वर्षों तक उन स्थानों को न भरते हुए उन्होंने "टेम्परारी" आधार पर जनरल केटेगरी के उम्मीदवारों को भरने की व्यवस्था होती रही है।

अनुसुचित जाति तथा जनजातियों के सदस्यों को आयु सीमा तथा योग्यता मानदंड में भी कुछ विशेष छूट देने का प्रावधान है। हाल की पारित रस्तोगी कमिशन में विश्वविद्यालयों के व्याख्याता के पदों के लिए उक्त जातियों को ५% गुणांक की छूट दी गई है राज्य सरकारों के द्वारा भी इस वर्ग के उत्कर्ष के लिए सरकारी नौकरियों में कुछ विशेष नियम बनाये गये है, इतना ही नहीं सरकारी नौकरियों में इस वर्ग के प्रतिनिधित्व के संदर्भ में जाँच पड़ताल करने के लिए समय-समय पर "विशेष अध्ययन

दलो'' की नियुक्तियाँ होती रही है ताकि यह अनवेषित किया जा सके कि इस दिशा में कितनी प्रगति हुई है। [६८]

(६) आर्थिक उन्नति हेतु किए गये प्रयत्न : ---

अनुसुचित जातियों तथा जनजातियों के सदस्यों की आर्थिक उन्नति हेतु सरकार द्वारा अनेक प्रयत्न किये गये हैं। उद्योग धंधो के लिए उन्हें आर्थिक साहयता (Subsidy तथा loan) करने का प्रावधान है। कृषि एवं उद्योग के क्षेत्रों में अस्पृश्य जातियों के उत्कर्ष के लिए उनको विशेष प्रकार के लाभ दिए गये है। चोथी पंचवर्षीय योजना में उक्त जाति के भूमिहीन मजदूरों को भूमि बाँटी जा चुकी है। इन लोगो का आर्थिक शोषण न हो इस लिए सहकारी को.ओप.रेटीव सोसायटी की व्यवस्था की गई है। उनको कुटीर उद्योगो में लगाने के लिए प्रशिक्षण, ऋण तथा अनुदान का प्रबंध किया गया है। भूतपूर्व प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरागांधी के २० सूत्रीय कार्यक्रम के अंतर्गत इन जातियों के ऋण ग्रस्त व्यक्तियों को ऋण से मुक्त करने, भूमि हीनो में भूमि का वितरण करने तथा बंधक श्रमिक प्रथा को समाप्त करने के प्रयत्न किये गये। ''बंधवा मजदूर''प्रथा के उन्मूलन के लिए सरकार ने सन् १९७६ में ''बंधवा श्रमिक उन्मूलन कानून'' को पारित किया। छठ्ठी पंचवर्षीय योजना (१९८०-८५) में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य पिछडे वर्गों के विकास पर सामान्य क्षेत्र (General Sectors) में होनेवाले खर्चों के अलावा पिछडे वर्ग क्षेत्र के अंतर्गत आर्थिक विकास कार्यक्रमो के लिए राज्यों तथा केन्द्रो द्वारा २४७ करोड़ रुपयों के खर्च की अतिरिक्त व्यवस्था की गई थी। [६९]

(७) अन्य कल्याण योजनाएँ : ---

उपरोक्त प्रावधानो के अतिरक्ति सरकार ने अनेक कल्याण योजनाओं के तहत अनुसुचित जाति तथा जन जातियों के उत्कर्ष के लिए नानाविध योजनाओं को कार्यान्वित किया है। इन कल्याण योजनाओं में अस्पृश्य जातियों के लोगों के स्वास्थाय तथा आवास पर सरकार द्वारा काफी धनराशी खर्च की जाति है। इन लोगों के मकान बनाने के लिए मुफ्त या नाम मात्र के मूल्य पर ऋण के रूप में सहायता दी जाती है इन लोगों को चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान की गई है उनके स्वास्थय के लिए अस्पतालों की व्यवस्था है। पीने के स्वच्छ पानी, बच्चों तथा प्रसुताओं के लिए कल्याण केन्द्रों और अस्पताली मोटरगाडी की व्यवस्था की गई है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में इन कल्याण योजनाओं के अंतर्गत ३०.०४ करोड रुपये खर्च किये गये थे। छट्ठी पंचवर्षीय योजना तक इन योजनाओं में राज्यों तथा केन्द्रों द्वारा कुल ९६०.३० करोड़ रुपये खर्च किये गये है। अस्पृश्यता की समाप्ति हेतु १९५५ में "अस्पृश्यता अपराध अधिनियम १९५५" लागू किया गया। तत्पश्चात सन् १९७६ में भारत सरकार ने एक पृथक कानून "नागरिक अधिकार संरक्षण कानून(Civil Right's Protection Act 1976)" पारित किया जो "अस्पृश्यता अधिनियम १९५५" का ही संशोधित रूप था यह अधिनियम १९ नवम्बर १९७६ से समूचे देशमें लागू है। इसके प्रमुख प्रावधान इस प्रकार है : --

(१) अस्पृश्यता के अपराध में दंडित लोग लोकसभा और विधान सभा का चुनाव नहीं लड सकेंगे।

(२) अस्पृश्यता को सातत्व अपराध(Cognizable Offpnce) घोषित किया गया है, जिसके अनुसार पुलिस बिना किसी शिकायत के भी अस्पृश्यता से सम्बन्धित अपराधमें स्वयं सीधी कार्यवाही कर सकती है। ऐसे अपराध में वादी एवं प्रतिवादी को किसी प्रकार का कोई समझौता करने की भी आज्ञा नहीं होगी।

(३) अस्पृश्यता सम्बन्धी अपराध के लिए पहली बार ६ महिने तक की कैद १०० रुपये से लेकर ५०० रु. तक के जुर्माने की व्यवस्था है। दूबारा अपराध करने पर ६ महिने से १ वर्ष तक की कैद तथा २०० से ५०० तक जुर्माने का प्रावधान है। और तीसरी बार अपराध करने पर १ वर्ष से दो वर्ष तक की कैद एवं १००० रु. तक के जुर्माने का प्रावधान रखा गया है।

(४) यदि कोई सरकारी कर्मचारी अस्पृश्यता से सम्बन्धित जाँच के कार्य की जानबूझकर उपेक्षा करेगा तो उसके इस कार्य को अपराध करार देते हुए उसे दंडनीय माना जायेगा।

(५) अस्पृश्यता का प्रचार करना अपराध होगा। उसे न्यायोचित ठहराना भी अपराध है किसी को अस्पृश्यता बरतने के लिए बाध्य करना भी दंडनीय अपराध माना जायेगा।

(६) सामूहिक रूप से अस्पृश्यता सम्बन्धी अपराध करने पर ऐसे किसी क्षेत्र के लोगो पर सामूहिक जुर्माना करने का अधिकार राज्य सरकारों को दिया गया है।

(७) पूजा के निजी स्थानों पर जहाँ जनता साधारणतया जाती रहती है, किसी भी रूप में अस्पृश्यता बरतना दंडनीय अपराध होगा।

(८) इस कानून का उल्लंधन करने वाले लोगो को दंड देने हेतु विशेष अधिकारी की नियुक्ति होगी और ऐसे मामलो की सुनवाई हेतु विशेष अदालतों के गठन की व्यवस्था की गई है।[७०]

इस कानून को सफल बनाने के लिए सरकारने प्रचार माध्यमों की भी सहायता ली है। राज्य सरकारों ने जिल्लाधिकारीयों तथा जनसंपर्क अधिकारियों को अस्पृश्यता निवारण हेतु प्रयास करने के लिए आदेश दे रखे है। प्रतिवर्ष "हरिजन दिवस" एवं "हरिजन सप्ताह" भी मनाये जाते है। सरकार द्वारा अस्पृश्यता निवारण के लिए प्रचारसाहित्य तथा दृश्य श्रव्य साधनों का उपयोग भी हो रहा है। समय-समय पर सरकार रेडियो, फिल्मों, दूरदर्शन, पोस्टरों तथा हेन्डबिलो के द्वारा भी अस्पृश्यता विरोधी प्रचार करती है। ऐसा करके अस्पृश्यता के विरोध जनमत तैयार किया जा

रहा है । ७१

इस प्रकार अनुसुचित जाति तथा जनजाति के विकास एवं उत्कर्ष के लिए कागज पर तो काफी कुछ हो रहा है परंतु स्वतंत्रता के बाद सत्ता के सूत्र उन्हीं लोगों के पास गये जो स्वतंत्रता के पूर्व भी सत्ता केन्द्रों में थे। अतः इस दिशा में कार्य ईमानदारी और निष्ठापूर्वक नहीं हुआ । ऐसा प्रतीत होता है कि कहीं न कहीं उनकी नीयत में खोट है । कानून या अधिनिगम कुछ भी कहते हो समाज में बहुत से लोग आज भी ऐसे है जो उनको बराबरी का हक देने के पक्ष में नहीं है । पिछड़ी जाति जो लोग उक्त प्रावधानों के कारण जो थोड़े- बहुत ऊँचे आये है, वे उनकी आँखों में किरकिरी की तरह खटक रहे है । इसी मनोवृत्ति के कारण आरक्षण विरोधी आंदोलनो को हवा दी जाती है । राजनीतिज्ञ उस समय मौन साध लेते हैं परंतु वे दूसरे लोगो को उसके लिए आंतरकि रूप से प्रोत्साहित करते है । अभी हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय के जो दो फैंसले आये है वे इन जातियों के हित में नहीं है । ऐसा प्रतीत होता है कि ''यथास्थितिवादी'' शक्तियाँ पुनर्गठित हो रही है । यदि Fundamenta List विचारधारा वाले लोग पुनः हावी हो गये तो विगत १००-१५० वर्षों की प्रगति पर पानी फिर जायेगा ।

निष्कर्ष

अध्याय के समग्रावलोकन से हम निम्नलिखित निष्कर्षो तक सहजतया पहुँच सकते है : ---

(१) वर्णव्यवस्था पर आधारित जातिसमूहों में से जिनका सहस्राधिक वर्षों से शोषण होता रहा है, उन जाति समूहो को ''दलित'' की संज्ञा दी गई है ।

(२) नवजागरण के कारण जो धार्मिक सामाजिक आंदोलन हुए ,उन आंदोलनों ने दलित विमर्श के नये आयामों को उद्घाटित किया ।

(३) हिन्दी कहानी का विकास २० वीं सदी के प्रारंभ में हुआ और उसके प्रारंभिक लेखको में किशोरीलाल गोस्वामी, माधवप्रसाद मिश्र, लाला भगवानदीन, आचार्य रामचंद्र शुक्ल तथा बंग महिला प्रभृति की गणना कर सकते है ।

(४) हिन्दी कहानी का चरमविकास प्रेमचंदयुग में प्रेमचंद द्वारा हुआ । प्रस्तुत कालखंड में हमें लेखकों के दो वर्ग मिलते है- प्रेमचंद स्कूल के लेखक तथा प्रसाद स्कूल के लेखक ।

(५) स्वतंत्रता पूर्व के प्रेमचंदोत्तर कहानी लेखको में जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल, वृंदावनलाल वर्मा, अमृतराय, भैरव प्रसाद गुप्त आदि मुख्य है ।

(६) स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में प्रमुखतया ''दलित विमर्श'' तथा ''नारी विमर्श'' के मुद्दे उभरकर आये है ।

(७) स्वातंत्र्योत्तरकाल में नई कहानी समान्तर कहानी, अगली कहानी, समकालीन कहानी, अकहानी जैसे अनेक आंदोलन उभरकर आते है । इन आंदोलनों के कारण हिन्दी कहानी को वेग मिलता है । वस्तुविषय भाषा तथा शिल्प की दृष्टि से हिन्दी कहानी ने कल्पनातीत विकास किया है ।

(८) दलितवर्ग में प्रमुखतया अछूत वर्ग, कर्मीन या शिल्पकार वर्ग, जरायम पेशावर्ग तथा आदिम जनजातियों का समावेश होता है ।

(९) अस्पृश्य जातियों पर धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक जैसी अनेकानेक निर्योग्यतायें (Disabilites) थोपी गई थी ।

(१०) उक्त निर्योग्यताओं के कारण दलित समाज शताब्दियों तक मुख्य धारासे पृथक-पृथक रहा ।

(११) ब्रह्मोसमाज, प्रार्थनासमाज, आर्यसमाज, थियोसोफिकल सोसायटी या ब्रह्मविद्या समाज तथा स्वाधीनता आंदोलन ने दलित जातियों में नई चेतना फूँकने का कार्य किया । राजाराम मोहनराय, केशवचंद्र सेन, विवेकानंद, महात्मा गांधी, डॉ. बाबासाहब आम्बेडकर, कोलहापुर के महाराजा साहू महाराज, बड़ौदा के महाराज सयाजी महाराज प्रभृति महानुभावो ने दलितोद्धार की दिशामें महत्व पूर्ण भूमिका निभायी है ।

(१२) स्वातंत्र्योत्तरकाल में संवैधानिक प्रावधानो, शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं, संसद विधान मंडलो तथा स्थानीक स्वराज्य की संस्थाओं में दलित जातियों के प्रतिनिधित्व के प्रावधानों, कल्याण संगठनों, कल्याण योजनाओं, सरकारी नौकरियों में आरक्षण के प्रावधानों आदि के कारण दलित वर्ग की स्थिति में कुछ सुधार अवश्य हुआ है। परंतु इस दिशा में जो निष्ठा तथा प्रामाणिकता स्वाधीनता-पूर्वकाल में दृष्टिगोचर होती थी उसका इधर के वर्षों में कुछ अभाव-सा प्रतीत होता है।

: संदर्भानुक्रम :

(१) हंस : अप्रैल-२००२ : पृ.२९

(२) भारत का सांस्कृतिक इतिहास : डॉ.हरिदत्त वेदालंकार : पृ.२७७ (प्रकाशन :आत्माराम एन्ड सन्स, दिल्ली)

(३) द्दष्टव्य : साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : डॉ. पारूकान्त देसाई : पृ. १०६

(४) काँचघर : डॉ. रामकुमार भ्रमर : पृ. १५

(५) काँचघर : डॉ. रामकुमार भ्रमर : पृ. ८४

(६) कब तक पुकारू : डॉ. रांगेय राघव : पृ. ४५

(७) द्दष्टव्य : भारतीय जनजातियाँ : डॉ. हरीशचंद्र उप्रैती : पृ. १

(८) द्दष्टव्य : भारतीय जनजातियाँ : डॉ. हरीशचंद्र उप्रैती : पृ. ३

(९) द्दष्टव्य : हिन्दी उपन्यासोमें दलितवर्ग : डॉ. कुसुम मेघवाल : पृ. २

(१०) द्दष्टव्य : Races and Cultures Of India : डॉ. मजूमदार : पृ. ३६८

(११) द्दष्टव्य : भारतीय जनजातियाँ : डॉ. हरीशचंद्र उप्रैती : पृ. २

(१२) द्दष्टव्य : जनजातीय जीवन एवं संस्कृति : डॉ. राजीवलोचन शर्मा : पृ. ९०-९२

(१३) द्दष्टव्य : जनजातीय जीवन एवं संस्कृति : डॉ. राजीवलोचन शर्मा :

पृ. ९२-९३

(१४) भारतीय समाज और संस्कृति : डॉ. के.एल.शर्मा : पृ. २६२

(१५) See : Caste in India : Dr. J.H.Hutton : P- 195

(१६) द्दष्टव्य : भारतीय सामाजिक समस्याएँ : डॉ.एम.एल.गुप्ता तथा डॉ.डी.डी.शर्मा : पृ. २७८

(१७) ऋग्वेद : १०, ९०-१२

(१८) द्दष्टव्य : Who were shudras : डॉ. आम्बेडकर ,पृ. २३९

(१९) जातीय व्यवस्था : डॉ.नर्मदेश्वर प्रसाद : पृ. २२

(२०) हिन्दू समाज निर्णय के द्वार पर : डॉ.के.एम. पणिकर : पृ.२६९-२८०

(२१) हिन्दू समाज निर्णय के द्वार पर : डॉ.के.एम. पणिकर : पृ. २७

(२२) द्दष्टव्य : मार्क्स और पिछड़े हुए समाज : डॉ.रामविलाश शर्मा : पृ. २३५

(२३) द्दष्टव्य : भारतीय सामाजिक समस्याएँ : डॉ.एम.एल.गुप्ता : पृ. २८१-२८२

(२४) धरती धन न अपना : जगदीशचंद्र : पृ. २७

(२५) द्दष्टव्य : संस्कृति के चार अध्याय : डॉ.रामधारी सिंह दिनकर : पृ. ५३६

(२६) द्दष्टव्य : संस्कृति के चार अध्याय : डॉ.रामधारी सिंह दिनकर : पृ. ५३८

(२७) द्दष्टव्य : संस्कृति के चार अध्याय : डॉ.रामधारी सिंह दिनकर : पृ. ५४०

(२८) द्दष्टव्य : संस्कृति के चार अध्याय : डॉ.रामधारी सिंह दिनकर : पृ. ५४७

(२९) उद्धत द्वारा : डॉ. रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय : पृ. ५५१

(३०) द्दष्टव्य : संस्कृति के चार अध्याय : पृ. ५५१

(३१) द्दष्टव्य : संस्कृति के चार अध्याय : पृ. ५५२

(३२) द्दष्टव्य : संस्कृति के चार अध्याय : पृ. ५५२

(३३) उद्धत द्वारा : डॉ.रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय : पृ. ५६४

(३४) उद्धत द्वारा : डॉ.रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय : पृ. ५६७

(३५) उद्धत द्वारा : डॉ.रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय :

पृ. ५८८

(३६) आधुनिक भारत में जातिवाद तथा अन्य निबंध : प्रो.जी.एस.घुर्ये का कथन : पृ. २०

(३७) आधुनिक भारत में जातिवाद तथा अन्य निबंध : प्रो.जी.एस.घुर्ये का कथन : पृ. २१

(३८) द्रष्टव्य : प्रेमचंद और अछूत समस्या : डॉ.कांति मोहन : पृ. ४१

(३९) द्रष्टव्य : प्रेमचंद और अछूत समस्या : डॉ.कांति मोहन : पृ. ४७

(४०) द्रष्टव्य : प्रेमचंद और अछूत समस्या : डॉ.कांति मोहन : पृ. ४८

(४१) भारतीय चिंतन परंपरा : डॉ.के.दामोदरन : पृ. ३६९

(४२) द्रष्टव्य : प्रेमचंद और अछूत समस्या : डॉ.कांति मोहन : पृ. ४९

(४३) भारतीय चिंतन परंपरा : डॉ.के.दामोदरन : पृ. ३८५

(४४) भारतीय चिंतन परंपरा : डॉ.के.दामोदरन : पृ. ३८६

(४५) भारतीय चिंतन परंपरा : डॉ.के.दामोदरन : पृ. ३८६-३८७

(४६) इकोनोमिक पोलिटिकल विकली : ८ फरवरी : १९७९

(४७) See : A century of Soical reforams in India : S.Natarajan : P. 51

(४८) Discovery of India : Pandit Javaharlal Nehru : P-355

(४९) A Cenntury of Soical reforams in India : S.Natarajan : P. 257-258

(५०) Ibid : P- 16

(५१) आर्यसमाज : लाजपतराय : पृ. २५७-२५८

(५२) प्रेमचंद और अछूत समस्या : डॉ.कांति मोहन : पृ. ५५-५६

(५३) Indian Review : sept. 1910 Quoted by Saint Nihal Sing.

(५४) द्रष्टव्य : डॉ.कांति मोहन : पृ. ५७

(५५) संस्कृति के चार अध्याय : डॉ.रामधारी सिंह दिनकर : पृ. ५९५

(५६) उद्धत द्वार : पंडित जवाहरलाल नेहरू : डिस्कवरी ओफ इंडिया : पृ. ३५७

(५७) भारतीय चिंतन परंपरा : डॉ.के. दामोदरन : पृ. ३७३

(५८) भारतीय चिंतन परंपरा : डॉ.के. दामोदरन : पृ. ३७३

(५९) भारतीय चिंतन परंपरा : डॉ.के. दामोदरन : पृ. ३७९

(६०) द्दष्टव्य : प्रेमचंद साहित्य में दलित चेतना : डॉ.बलवंत साधू जाधव : पृ. २९-४२

(६१) द्दष्टव्य : प्रेमचंद साहित्य में दलित चेतना : डॉ.बलवंत साधू जाधव : पृ. ३७-३८

(६२) द्दष्टव्य : प्रेमचंद साहित्य में दलित चेतना : डॉ.बलवंत साधू जाधव : पृ. ४०

(६३) द्दष्टव्य : प्रेमचंद साहित्य में दलित चेतना : डॉ.बलवंत साधू जाधव : पृ. ४०

(६४) उद्धत द्वारा : प्रेमचंद साहित्य में दलित चेतना : पृ. ४१

(६५) द्दष्टव्य : लेख : पददलितों की समस्याएँ : भारतीय सामाजिक समस्याएँ : डॉ.एम.एल.गुप्ता : पृ. २८७-२८८

(६६) India 1984 : P- 150

(६७) द्दष्टव्य : लेख : पददलितों की समस्याएँ : भारतीय सामाजिक समस्याएँ : डॉ.एम.एल.गुप्ता : पृ. २८८

(६८) द्दष्टव्य : लेख : पददलितों की समस्याएँ : भारतीय सामाजिक समस्याएँ : डॉ.एम.एल.गुप्ता : पृ. २८९

(६९) द्दष्टव्य : लेख : पददलितों की समस्याएँ : भारतीय सामाजिक समस्याएँ : डॉ.एम.एल.गुप्ता : पृ. २८९-२९०

(७०) द्दष्टव्य : लेख : पददलितों की समस्याएँ : भारतीय सामाजिक समस्याएँ : डॉ.एम.एल.गुप्ता : पृ. २९०-२९१

(७१) द्दष्टव्य : लेख : पददलितों की समस्याएँ : भारतीय सामाजिक समस्याएँ : डॉ.एम.एल.गुप्ता : पृ. २९१